राम-कीर्ति

थाईदेश (स्याम) मे प्रचलित राम-कथा

स्वामी सत्यानंद पुरी

•

अनुवादक

गंगाप्रसाद उपाध्याय

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

पहली बार १९६९

मूल्य चार रुपये

मुद्रक
उद्योगशाला प्रेस
दिल्ली

प्रकाशकीय

हमने 'मण्डल' से रामकथा से संबंधित अनेक पुस्तकें प्रकाशित की है। श्री राजगोपालाचार्य की 'दशरथनदन श्रीराम' तथा श्री विश्वम्भर सहाय प्रेमी की 'राम-कथा-माला' की चौदह पुस्तके बहुत लोकप्रिय हुई है। स्व० वासुदेवशरण अग्रवाल की पुत्री द्वारा बालकों के लिए लिखी 'बाल राम-कथा' से भी नई पीढी ने ही नही, अन्य पाठकों ने भी लाभ उठाया है, आज भी उठा रहे है।

हमे हर्ष है कि उस भण्डार मे हम एक मूल्यवान पुस्तक की वृद्धि कर रहे है। पाठक जानते है कि दक्षिण-पूर्व एशिया मे रामकथा घर-घर प्रचलित है। थाईलैण्ड मे तो मानो राम-भक्ति की मदाकिनी प्रवाहित है। उस देश की वर्तमान राजधानी बैंकाक से पहले वहा की राजधानी अयोध्या थी और मरकत बुद्ध के मदिर की दीर्घा मे पूरी रामायण आज भी रग-बिरगे विशाल चित्रो मे अकित है।

थाईलैंण्ड मे कई रामायणो का प्रचलन है, जिनमें एक है स्वामी सत्यानद विरचित 'राम-कीर्ति।' प्रस्तुत पुस्तक उसीके अग्रेजी सस्करण का हिन्दी रूपान्तर है। इस अनुवाद की एक विशेषता यह भी है कि इसे हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ लेखक तथा आर्य समाज के विशिष्ट नेता श्री गगाप्रसाद उपाध्याय ने किया है। उपाध्यायजी का कुछ समय पूर्व देहान्त हो गया। हमे बड़ा खेद है कि पुस्तक उनके जीवन-काल में प्रकाशित नही हो पाई।

हिन्दी की पाण्डुलिपि हमे भारत और थाईलैण्ड के सबधो को प्रगाढ करने वाली बैंकाक की लोकोपयोगी साहित्यिक एव सास्कृतिक सस्था 'थाई-भारत-सास्कृतिक-भवन' (थाई भारत कल्चरल लाज) के सचालक प०रघुनाथ शर्मा के सौजन्य से प्राप्त हुई है। चित्र भी उन्होने ही सुलभ कराये है। हम उनके अत्यन्त आभारी है।

—मंत्री

स्वामी सत्यानंद पुरी

स्वामी सत्यानद पुरी का नाम थाई-भारत-सवघ के इतिहास मे अमर रहेगा, क्योकि स्वामीजी ने बैंकाक आते ही ऐसा यत्न किया कि स्याम देश के थाई लोगो के भावो का अच्छा अध्ययन कर सकें। थाई-भारत-सास्कृतिक भवन उन्हीके परिश्रम का फल है।

स्वामीजी का पहला नाम श्री प्रफुल्ल कुमार सेन था। वह बगाल मे ३ मार्च १९०२ को उत्पन्न हुए थे। उन्होने कलकत्ता विश्वविद्यालय से दर्शन-शास्त्र मे और बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से सस्कृत मे एम०ए० पास किया और दोनो मे सर्वप्रथम तथा प्रथम श्रेणी मे रहे। फिर वह सन्यासी होकर 'सत्यानद पुरी' कहलाये और ससार के उपकार मे अपना जीवन व्यतीत करने लगे।

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की प्रेरणा से वह १९३२ मे थाईलैण्ड आये और छ मास मे ही उन्होंने स्यामी भाषा पर इतना आधिपत्य प्राप्त कर लिया कि चूलालगकर्ण यूनीवर्सिटी मे थाई-नरेश और महारानी की उपस्थिति मे स्यामी भाषा मे एक व्याख्यान दिया।

१९४२ की ३ मार्च को स्वामीजी सिंगापुर गये। उस समय द्वितीय महायुद्ध छिडा हुआ था। जापानियो के निमन्त्रण पर वह टोकियो जा रहे थे कि २४ मार्च १९४२ को हवाई जहाज की दुर्घटना मे उनका शरीरपात हो गया।

स्वामी सत्यानदजी की स्याम देश मे विशेष प्रतिष्ठा थी। वहा के विद्वान उनके प्रति गहरी श्रद्धा रखते थे। उन्होने भारतवर्ष के स्याम मे रहनेवाले लोगो और थाई लोगो मे आत्मीयतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने मे बड़ी सहायता दी और वह थाई-भारत-सास्कृतिक भवन के सस्थापक थे।

उनकी मृत्यु पर भारतवासियो को तो दु ख हुआ ही, परन्तु थाई लोगो का कहना है कि उनके निधन से थाई देश की जो क्षति हो गई, वह पूरी नही हो सकती।

स्वामीजी थाई देश मे दस साल रहे। इस बीच उन्होने ये पुस्तके लिखी

अंग्रेजी मे

(1) The Origin of Buddhist Thoughts

(2) Ramakirti.

संस्कृत में

धर्म-पदार्थ-कथा (पाली की धम्मपदात्य कथा का अनुवाद)

थाई भाषा मे

1. Principles of Debate (2 vols)
2. A Hand-book of Tark Philosophy
3. Yoga Philosophy (2 vols)
4. Oriental Philosophy (pt. I)
5. The Life of Mahatma Gandhi
6. Pomdoi
7. The Life of Guru Govind Singh

आज स्वामीजी के निधन को अनेक वर्ष हो गये, परन्तु बैंकाक के सभी भारतीय उनका निरतर स्मरण करते है।

प्रस्तावना

प्रस्तुत पुस्तक की पृष्ठभूमि मे एक विशेष इतिहास है, जिसका सक्षिप्त विवरण देना मैं अपना कर्तव्य समझता हू और उसीकी पूर्ति के उपलक्ष्य मे नीचे की पक्तिया लिखने का प्रयास है।

भारतीय सस्कृति कितनी महान रही होगी, इसका अनुमान इसीसे लग जाता है कि यह देश, जो 'थाई-प्रदेश' के नाम से विख्यात है, भारतीय सस्कृति से ओतप्रोत है। इस देश के साथ जो भारतीय सास्कृतिक सम्बन्ध अविच्छन्न रूप से है, उनमे रामायण अपना एक विशेष स्थान रखती है। रामायण को यहा के आबाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सब भली भाति जानते है। जिस प्रकार भारत मे यह सम्मानित ग्रथ रामायण, रामचरित-मानस आदि नामो से पुकारा जाता है, उसी प्रकार इसका नाम यहा थाई देश मे 'रामकीर्ति' है। इसका उच्चारण 'राम-कियन' किया जाता है, पर लिखने मे ठीक 'रामकीर्ति' ही है।

आज से करीब मैतीस वर्ष पूर्व गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर की प्ररणा तथा अनुज्ञा से एक भारतीन सन्यासी, जिनका नाम स्वामी-सत्यानद पुरी था, यहा आये। लगभग सत्ररह वर्ष पहले वह इस ससार से उठ गये। अनुमानत सन् १९२६ मे जब गुरुदेव इस देश मे पधारे थे, तब यहा के दिवगत नरेश महाराज प्रजादीपक तथा तत्कालीन शिक्षा-मत्री माननीय प्रिस धानी निवातजी ने (जो अबतक स्वामीजी के पूर्ण भक्त है) गुरुदेव से अनुरोध किया था कि वह एक ऐसा व्यक्ति अपने देश से भेजें, जो यहा रहकर और यहा की भाषा (थाई भाषा) का अव्ययन करके भारत के साथ के हमारे सास्कृतिक सबधो को बल एव प्रोत्साहन प्रदान कर सके।

स्वामीजी असाधारण प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति थे और सस्कृत, पाली तथा अग्रेजी के प्रकाण्ड पडित थे। बगाली होने के नाते बगला भाषा का विद्वान होना तो स्वाभाविक ही था। उन्होने यहा आने के दूसरे

दिन से ही थाई भाषा का अध्ययन आरम्भ कर दिया।

यहा यह कह देना उपयुक्त होगा कि इस देश की भाषा की भारत की अन्य भाषाओ की तरह सस्कृत ही जननी है। स्वामीजी बडे योग्य तथा उत्साही व्यक्ति थे। अत उन्हे थाई भाषा को सीखने में न तो अधिक समय लगा, न अधिक कठिनाई हुई। इसका अनुमान एक छोटे-से उदाहरण से सहृदय पाठक कर सकेंगे।

स्वर्गीय स्वामीजी ने छ माह के अध्ययन के बाद स्थानीय विश्व-विद्यालय (चूलालगकर्ण यूनीवर्सिटी) मे 'प्रज्ञापल' उपाधि-वितरण-महोत्सव पर महाराज प्रजादीपक के सभापतित्व मे विश्वविद्यालय के उपकुलपति, गणपति (डीन), आचार्यो, राष्ट्र-मत्रियो तथा छात्र-छात्राओ के समक्ष विना लिखे और बिना कोई नोट सामने रखे आधा घण्टे थाई भाषा मे भाषण दिया। इस छोटी-सी अवधि का उनका अध्ययन सबको चकित कर देनेवाला था। आगे चलकर तो दो वर्षो के अध्ययन के पश्चात् उन्होने थाई भाषा मे ग्रथ लिखने प्रारम्भ कर दिये। भारतीय दर्शन तथा गीता के अनुवाद के साथ-साथ भारतीय सस्कृति की उज्ज्वलता के प्रतीक कोई पन्द्रह-सोलह ग्रथो की रचना की, जिनका आज भी थाई-जगत मे ऊचा तथा महत्वपूर्ण स्थान है।

इसमे तनिक भी अतिशयोक्ति नही कि यहा का शिक्षित समुदाय स्वामीजी को अपना आचार्य मानता था। उनकी लेखन-शैली का प्रभाव उनके हृदयो पर अंकित था, है और रहेगा, ऐसा अनुभव तथा विश्वास के साथ कहा जाता है। उनके व्यक्तित्व एव इस देश को भारतीय सास्कृतिक साहित्य की देन का एक और उदाहरण प्रस्तुत करना अनुपयुक्त न होगा।

द्वितीय विश्वयुद्ध का प्रसग है। स्वामीजी के अवसान के बाद इन पक्तियो का लेखक तथा श्री देवनाथदास (यहा के भारतीय स्वतन्त्रता-सग्राम के लेखाधिकार-जनरल सेक्रेटरी), यहा के प्रधानमत्री फील्ड-मार्शल श्री पी० विपुल सग्रामजी के पास इस उद्देश्य से गये कि यहा के भारतीयो तथा भारत के प्रति उनकी और उनकी सरकार की जो सद्भावना तथा सहानुभूति स्वामीजी के समय रही, वह अब भी और

भविष्य मे बनी रहे। हमारी बातो को सुनकर उत्तर मे प्रधानमत्री महोदय ने इसका आश्वासन देते हुए स्वामीजी के प्रति अपने हृदय के उद्गार इन शब्दो मे प्रकट किये :

"स्वामीजी के निधन से भारत की इतनी क्षति नही हुई, क्योकि भारत मे इनकी योग्यता तथा इनसे भी अधिक योग्यता के बहुत-से व्यक्तियो का हो सकना असभव नही, पर भगवान बुद्ध के बाद हमारे देश को स्वामीजी के रूप मे भारत का यह दूसरा दान था।" इन शब्दो मे उस महापुरुष के प्रति अपनी श्रद्धाजलि अर्पण करने मे माननीय प्रधानमत्री की कितनी महानता थी!

इन्ही स्वामीजी ने इस देश की मूल थाई रामायण (रामकीर्ति) का अग्रेजी मे अनुवाद किया था, जिसके कई सस्करण समाप्त हो चुके है और जिसका भारतीय विद्वत् समाज मे तो सम्मान है ही, पाश्चात्य शिक्षित समाज मे भी यह ग्रथ अपना विशेप स्थान रखता है।

३ मार्च सन् १९५२ को भारत के सुयोग्य विद्वान प० गगाप्रसाद उपाध्याय यहा बैकाक पधारे और २२ मार्च, १९५२ तक थाई-भारत-सास्कृतिक भवन को (जिसके प्रतिष्ठाता स्वर्गीय स्वामीजी थे) उनके आतिथ्य का सौभाग्य प्राप्त हुआ। भवन से सम्बन्धित पुस्तकालय से स्वामीजी की अग्रेजी मे अनूदित 'रामकीर्ति' पुस्तक उनके हाथ लगी और उन्होंने उसे आद्योपान्त पढा। दूसरे दिन अपरान्ह मे जब मैं उपाध्यायजी के पास पहुचा तो उनको उसके हिंदी अनुवाद मे व्यस्त पाया। पूछने पर बोले, "पडितजी, दिन तो अपने पास कुछ है ही, सोचा कि क्यो न इसका हिंदी अनुवाद कर दू, ताकि हिंदी जगत को भी इससे लाभ मिले और भारत मे प्रचलित रामायणो के साथ तुलनात्मक अध्ययन मे जनता को सहायता मिले।" कितना सुन्दर था उनका कथन, कितनी सुन्दर थी उनकी विचारधारा और कितना सुन्दर था उनका दृष्टिकोण! इससे मुझे हर्प भी हुआ और भारतीय विद्वत्ता की दूरदर्शिता का गौरव भी। कुछ ही दिनो मे उपाध्यायजी ने अनुवाद सम्पूर्ण कर थाई-भारत-सास्कृतिक-भवन, बैंकाक को समर्पण कर दिया।

उस समय के उनके शब्द आज भी मेरे कानों मे गूंजते है। उन्होने कहा था।

"यह लो, पडितजी, स्वामी सत्यानन्द पुरी एवं थाई-भारत-सास्कृतिक भवन को अपनी स्मृति के रूप मे उपहार-स्वरूप इसे दे रहा हूं।" उपाध्यायजी की सिद्धहस्त लेखनी से भारतीय पाठक अनभिज्ञ नही है, पर जब मैंने उसे आद्योपान्त पढा तो मैं मुग्ध रह गया और भवन की ओर से उनके इस अमर कीर्ति-स्वरूप उपहार को स्वीकार करते हुए श्रद्धा के साथ धन्यवाद दिया। अनन्तर एक थाई युवक श्री करुणा कुसलासय को, जो भवन के एक सहकर्मी तथा हिंदी के अच्छे ज्ञाताओं में से है और जिन्हे सस्कृत का भी ज्ञान प्राप्त है, अग्रेजी की अच्छी योग्यता तो रखते ही है, साथ ही जिन्होने 'रामकीर्ति' का स्वाध्याय किया है, नामावली आदि सशोधनार्थ उपाध्यायजी की अनूदित मूल हिंदी पाण्डुलिपि दी और उन्होने कुछ ही दिनो मे इस कार्य को सपन्न कर दिया।

अब प्रश्न था भारत मे इसके छपने आदि का। हम बहुत दूर बैठे थे। भारत मे एक-दो स्थानो पर पत्र द्वारा इसकी चर्चा की, पर उन्होने हस्तलिखित मूल प्रति भेज देने की बात लिखी। बार-बार विचार सामने आता रहा कि असावधानी से कही मूल प्रति इधर-उधर हो गई तो ? इस आशका के कारण हम अतिम निर्णय नही कर सके और प्रकाशन मे विलब हो गया।

सन् १९६३ मे अपने दक्षिण-पूर्व एशियाई देशो के प्रवास के सिलसिले मे श्री यशपाल जैन (सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली के सचालक-मण्डल के सदस्य) तथा श्री विष्णु प्रभाकर बैंकाक पधारे और करीब एक सप्ताह भवन के ही सम्मानित अतिथि होकर भवन मे ठहरे। बातचीत के सिलसिले में इस पुस्तक की चर्चा आ गई। इन दोनों महानुभावो ने अग्रेजी संस्करण को पढा और हिंदी-अनुवाद भी। तदुपरान्त इसके प्रकाशन का भार सहर्ष अपने ऊपर ले लेने का आश्वासन दिया, जिससे हमे अपार प्रसन्नता हुई। भवन का दायित्व हलका हुआ और चिंता से मुक्ति मिली।

अब ऐसा लग रहा है कि जिस प्रकार स्वामी सत्यानन्द पुरी ने इस देश, भारतीय साहित्य तथा सस्कृति की सेवा की, उसी प्रकार आदरणीय वधु श्री गगाप्रसाद उपाध्यायजी (प्रयाग) ने अपनी इस देश की यात्रा की स्मृति-स्वरूप भवन की तथा हिंदी-जगत की यह निस्पृह एव स्तुत्य सेवा की। भवन उनकी इस सेवा को सदा आदर की दृष्टि से देखता रहेगा।

श्री करुणा कुसलासयजी का आभार माने विना सतोप नही होगा, जिन्होने नामावली आदि के सशोधन-कार्य मे सहयोग दिया।

अत मे हिंदी साहित्य-सेवी सुयोग्य लेखक दोनो प्रियवधु श्री विष्णु प्रभाकर तथा श्री यशपाल जैन का वहुत-वहुत धन्यवाद है, जिन्होने पुस्तक के प्रकाशन-कार्य को सुगम वना दिया। 'सस्ता साहित्य मण्डल' अपने नाम के अनुरूप ही इस पुस्तक का प्रकाशन कर जनता को यह पुस्तक सुलभ करेगा, ऐसी आशा है।

थाई-भारत सास्कृतिक भवन
वैंकाक

रघुनाथ शर्मा
सचालक

प्राक्कथन

'स्यामी रामायण' या 'राम-कीर्ति', जिसको स्यामी भाषा (थाई भाषा) मे 'रामकियन' कहकर पुकारते है, श्री स्वामी सत्यानन्दजी पुरी की अंग्रेजी मे लिखित 'राम-कीर्ति' का हिन्दी अनुवाद है। स्वामीजी ने 'राम-कीर्ति' पुस्तक को स्याम देश मे प्रचलित रामायण के आधार पर यह दिखलाने के लिए लिखा था कि भारतवर्ष की अपूर्व देन वाल्मीकि महाकविकृत रामायण का प्रभाव दूसरे देशो मे भी किस प्रकार फैला हुआ है, और राम की कहानी आज भी किस प्रकार भिन्न-भिन्न देशो की सभ्यता को प्रभावित करने मे सहायक हो रही है।

स्वामी सत्यानन्दजी लिखते है कि रामायण का प्रभाव स्याम देश मे तीन रूपो मे मिलता है। साहित्य के रूप मे, कला के रूप मे और अभिनय के रूप मे।

थाईलैण्ड मे रामायण का प्रभाव ईसा की १३ वी शताब्दी तक दृष्टिगोचर होता है, परन्तु रत्न कोषिन्द्र युग (लगभग १७८१ ई०) मे रामायण पर स्यामी भाषा मे एक काव्य लिखा गया, जो स्यामी साहित्य का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसका श्रेय वर्तमान चक्रीवंश के प्रथम सम्राट प्रथम राम को था। उनके पुत्र द्वितीय राम ने (१८०९-१८२४ ई०) इसको नाटक का रूप दिया। इसके अभिनय की स्याम देश मे बडी ख्याति हुई। बडे-बडे उत्सवों मे यह नाटक सदैव खेला जाता रहा है और थाई लोग इसको प्रेम से देखते है।

अयोध्या काल मे (१३४९-१६४७ ई०) भी रामायण के कुछ चिह्न मिलते है। भारतवासियो की जानकारी के लिए यहा यह लिख देना उचित होगा कि यह अयोध्या भारत की अयोध्या नही है। स्याम देश मे भी एक अयोध्या है। जिस युग का हम यहा वर्णन कर रहे है, उसमे बैंकाक से थोडी दूर पर अयोध्या नगरी थी। वही स्याम की राजधानी थी। उस समय रामायण की किसी-किसी कहानी का नाटक बनाकर

खेलते थे। द्वितीय राम के पहले धोनवुरी अर्थात् धनपुरी के राजा ने रामायण के कुछ अश को कविता के रूप मे लिखा था। इससे वहुत दिनो पहले एक और खेल खेला जाता था, जिसको थाई भाषा में 'हून' कहते थे। 'हून' का अर्थ है 'चमडा।' उस समय चमडे को रगकर उसपर रामायण के पात्रो के भिन्न-भिन्न वर्णो मे सुन्दर चित्र बनाये गए थे। जैसे राम का हरा, लक्ष्मण का सुनहरा, इत्यादि और उन्ही चित्रो का प्रदर्शन किया जाता था। लोगो की धारणा है कि थाईलैण्ड मे हून' जावा से आया और सस्कृत छाया नाटक का रूपान्तर मात्र है।

कला के रूप मे तो स्याम मे रामायण का अद्भुत प्रभाव है। मरकत वुद्ध के मदिर के, जिसको स्यामी भाषा मे वद् फ्रा के ओ कहते है, अर्थात् मरकत की वनी हुई भगवान वुद्ध की मूर्ति, राममदिर की दीवारो पर राम की कहानिया अकित है। इनकी सख्या दोसौ के लगभग होगी। वे प्रथम राम के समय तक की याद दिलाती है। रामायण के चित्र पखो और तकियो तक पर अकित मिलते हैं। सिगरेट के वक्सो पर भी उन चित्रो को वनाया जाता है।

स्याम देश मे रामायण या वाल्मीकि के नाम से लोग अभिज्ञ नही थे, यद्यपि रामायण की वहुत-सी घटनाओ के विभिन्न रूप यहा पाये जाते थे। थाईलैण्ड मे रामायण भिन्न-भिन्न देशो और भिन्न-भिन्न मार्गो से आई हुई प्रतीत होती है।

रामकीर्ति को पढने से ज्ञात होगा कि रामायण की मुख्य कथा तो वही है, जो भारतवर्ष मे प्रसिद्ध है, परन्तु कही-कही भेद है, जैसे—

(१) 'राम-कीर्ति' नारायण के तीसरे अवतार राम से आरभ होती है। स्यामी मे पहले एक पुस्तक थी, जिसका नाम था 'नारायण सिप्पग' (नारायण के दस अवतार) स्यामी भाषा मे दस को सिप कहते है। दश अवतार ये थे—वाराह, मच्छ, भैसा, त्रिनुट से शिवलिंग लेने के लिए सन्यासी का अवतार, सिह, कुब्ज, कृष्ण, अप्सरा, राम।

(२) भारत की रामायण मे नारायण सर्वोपरि है, परन्तु 'राम-कीर्ति' मे नारायण का पद ईश्वर अर्थात् शिव से नीचे है।

(३) नामों में भी भेद है। नाम रखने की नीति के तीन रूप है —

अ. कुछ नाम ज्यो-के-त्यो है जैसे राम, हनुमान।

आ कुछ नाम सर्वथा भिन्न है, जैसे मन्थरा के स्थान मे कुची (सस्कृत कुब्जा का अपभ्र श)।

इ. कुछ नामो मे थोडा-सा परिवर्तन है, जैसे शत्रुघ्न के स्थान मे शत्रुद, कुबेर के स्थान मे कुपेरन। यह उच्चारण-भेद के कारण भी है, जैसे दो व्यंजनो के बीच का स्वर 'अ' लुप्त हो गया या अन्त का अक्षर छोड दिया गया। इस प्रकार गरुड का 'ख्ुत' हो गया। स्यामी भाषा प्राय· एकस्वरी है। इसलिए भी कुछ नाम छोटे हो गये है, जैसे 'लक्ष्मण' का 'लक्षण' हुआ और फिर केवल 'लक्' रह गया। थाई भाषा मे वर्ग के तृतीय और चतुर्थ अक्षर को एकसा बोलते है, जैसे 'ग' और 'घ' दोनो को लिखते तो ठीक है, परन्तु उच्चारण करते है सस्कृत 'ख' का। भरत को वरत लिखते है और फ़ोत पढते है।

ई. कुछ नाम सर्वथा भिन्न है। सभवत· इसका कारण यह है कि राम की कथा इस देश मे कई मार्गों से आई है और हरेक मार्ग का कुछ-कुछ प्रभाव पडा है, जैसे 'रामकीर्ति' मे कुबेर के स्थान मे 'कुपेरन' है। तमिल भाषा मे भी 'कुपेरन' ही है। अतः प्रतीत होता है कि यह शब्द तमिल से लिया गया है।

मैं बैंकाक मे ३ मार्च, १९५२ को आया और थाई भारत सास्कृतिक भवन के अध्यक्ष प० रघुनाथ शर्मा के आतिथ्य में थाई भारत सांस्कृतिक भवन मे रहा। पडितजी ने मुझे 'राम-कीर्ति' की एक प्रति दी। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि रामायण का स्याम देश पर इतना प्रभाव है। अतः मैने उचित समझा कि भारतीयों की जानकारी के लिए इसका हिन्दी मे अनुवाद कर दिया जाय।

स्यामी भाषा न जानने के कारण मै मूल पुस्तक से मिलान नही कर सका, परन्तु यत्न किया है कि यथाशक्ति अग्रेजी का ठीक-ठीक भाव हिन्दी में रख दिया जाय।

बैंकाक, १४-३-५२ —गगाप्रसाद उपाध्याय

भूमिका

जिन काव्य-रचनाओ ने विश्व-साहित्य पर अपनी अमिट छाप छोडी है, उनमे रामायण महाकाव्य का स्थान सर्वोपरि है। भारत ही नही, उससे बाहर के देशो को भी उसने प्रभावित किया है और अनेक सदियो की विपरीत परिस्थितियो के बावजूद वहा के धर्म, कला तथा साहित्य को सुव्यवस्थित किया है। विश्व मे यदि कभी कोई ऐसा कवि उत्पन्न हुआ है, जिसने न केवल साहित्य के व्यापक क्षेत्र मे, बल्कि धर्म और कला के क्षेत्र मे भी अपनी अमर लेखनी से एक विशिष्ट सम्प्रदाय का निर्माण किया तो वह मानवता के आदि-कवि, सस्कृत काव्य के जनक वाल्मीकि ही है। विद्वत्ता यह पता लगाने मे असमर्थ है कि महाकवि को किस भावना से ऐसी प्रेरणा मिली कि मात्र लेखनी के सहारे वह इतनी अखूट स्फूर्त्ति भर पाये, जिससे न केवल उनकी मातृभूमि भारत का बल्कि भारत से बाहर के देशो का भी सास्कृतिक स्रोत सतत प्रवहमान है।

वाल्मीकि की मातृभूमि से दूर के देशो मे भी कवियो ने उनकी अनुकृति के असीम भण्डार मे रत्न चुन-चुनकर अपने साहित्य को समृद्ध किया है। कलाकारो ने उनसे चिरस्थायी कला की प्रेरणा लेकर अपनी कलाकृतियो को अमर बनाया है। यही नही, बल्कि खेतो मे काम करने वाले किसान और नाव चलानेवाले लोग भी उनसे अप्रभावित नहीं रहे, जो उनके गीतो को गुनगुनाते हुए अपनी थकावट भूल जाते है। निस्सन्देह वाल्मीकि की लेखनी ने मानव-हृदय पर जिस सम्पूर्णता से प्रभाव डाला है वैसा प्रभाव और किसी कवि की लेखनी डालने मे सफल नही हुई है।

राम इतिहासकालीन राजा थे या नही, इस बारे मे कुछ व्यक्ति अभी भी शकाशील है, यद्यपि कोई भी भारतीय उनके अस्तित्व को अस्वीकार नहीं करता। लेकिन ऐसे लोग भी इस बात से निश्चय ही

सहमत होगे कि वाल्मीकि की लेखनी से उद्भूत राम का अस्तित्व था और भविष्य में भी सदा-सर्बदा उनका अस्तित्व बना रहेगा। राम जैसे कर्त्तव्य-परायण पुत्रो, सीता जैसी पतिव्रता पत्नियों और लक्ष्मण जैसे भ्रातृभक्त भाइयो की भारतीय इतिहास मे कमी नही, लेकिन पुरातन-काल के इस महाकवि की अनुपम कृति के आगे उनकी आभा उसी प्रकार धीमी पड़ जाती है जैसेकि चन्द्रमा की रजत ज्योति के बढते हुए प्रकाश मे चमकते हुए तारो की आभा फीकी पडने लगती है। अपने प्रश्रयदाता राजाओ की यश कीर्त्ति को अमर बनाने का अतीत मे कवि-गण अपनी रचनाओ द्वारा बराबर प्रयत्न करते रहे है, लेकिन उनकी कृतियो को साहित्य के मृदु सगीत मे एक सुरीली पर अगम्य तान जोडने से अधिक सफलता नही मिली। इसके विपरीत मानव-सभ्यता के अस्पष्ट बाल्यकाल मे और इतिहास के उन अस्पष्ट दिनो मे, जिन्हे हम बहुत-कुछ भूल चुके है, जिस काव्य-संगीत ने जन्म लिया वह दूरवर्त्ती थाई देश सहित अनेक देशो के साहित्य-सगीत को अभी भी झकृत कर रहा है।

थाई देश के रामायण-साहित्य मे एक विशिष्टता है। वह यह कि 'रामायण' शब्द उसमे कही नही मिलता और उसके रचयिता के बारे मे भी सामान्यतः कोई कुछ नही जानता। थाई लोग तो 'राम-कीर्त्ति' को ही जानते है, क्योकि इसी रूप मे वहा रामायण का प्रचार है। यह श्रेय तो थाई देश के छठे राम राजा को ही है कि उन्होने 'राम-कीर्त्ति' के मूल का पता लगाकर उसका पाण्डित्यपूर्ण विश्लेषण किया। तभी जाकर 'राम-कीर्त्ति' के मूल रूप रामायण का पता लगा और उसके रचयिता वाल्मीकि के बारे मे मालूम हुआ। लेकिन तब भी यह जान-कारी उन्हीतक सीमित रही, जो थाई देश के उच्च साहित्य मे विशेष रुचि लेते है। जहातक सर्वसामान्य का सम्बन्ध है, उन्हे अभी भी राम-कीर्त्ति के मूल नाम और उसके रचयिता के बारे मे कुछ भी पता नही है।

कोई लोकप्रिय गीत जब लोगो को अपने माधुर्य से मोह लेता है और वे उसके सम्मोहन में फस जाते है तो धीरे-धीरे इस बात

को वे भूल जाते है कि उसका रचयिता कौन है, वाल्मीकि के बारे में भी ऐसा ही हुआ है। उनकी रचना के सम्मोहन से लोग इतने मुग्ध हो गये हैं कि उसके लेखक की खोज करने का उन्हे ध्यान ही नही रहा। वह कवि सचमुच धन्य है, जो अपनी काव्य-प्रतिभा के अरुणोदय में भी उसी प्रकार अस्पष्ट रहता है, जिस तरह चकाचौंध करनेवाली किरणों से घिरा हुआ सूर्य। सूर्य के उज्ज्वल प्रकाश का तो हम उपयोग करते है, किन्तु उसकी ओर देखने पर हमारी आखे चौंधियाने लगती हैं, जिससे उसकी ओर देखने का साहस नही करते।

ऐसी स्थिति के बावजूद थाई देश की संस्कृति पर रामायण का जो प्रभाव पड़ा, वह इन तीन क्षेत्रो मे बिल्कुल स्पष्ट है--साहित्य, कला और नाटक। थाई देश मे रामायण के प्रभाव का सर्वप्रथम समावेश तो ईसाई सवत् की तेरहवी सदी मे ही खोजा जा सकता है, लेकिन राम-कीर्त्ति का सुन्दर महाकाव्य मे समावेश रत्न कोसिन्द्र-काल (लगभग १७८१ ईस्वी) के प्रारम्भ मे ही हुआ और वह महाकाव्य आज भी थाई देश के श्रेष्ठ साहित्य का महारत्न माना जाता है। प्राचीनकाल से रामायण का कितना प्रभाव वहा चला आ रहा है इसका पता अक्सर उस समय के राजाओ और राज-पुरुषो के नामो तथा तत्कालीन साहित्य के उद्धरणों से लगता है। राम-कीर्त्ति के आदि कवि होने का श्रेय प्रथम राम राजा को है, जो इस समय शासन कर रहे चक्री-वश के संस्थापक थे। काव्य को नाट्यरूप उनके पुत्र द्वितीय राम राजा (१८०९-१८२४ ई०) ने दिया और मुखौटे लगाकर खेले जानेवाले नाटक का उसने रूप लिया। अभिनय करनेवाले पात्र-पात्रो की भड़कीली पोशाक, तालसुर के साथ उनके कोमल शरीर की मोहक गतिविधि और सलग्न संगीत की सुरीली तान के साथ मुखौटेवाला यह अभिनय सार्वजनिक समारोहो के समय अब भी खेला जाता है और चलचित्रो के इस जमाने मे भी बहुसख्यक दर्शकों को आकर्षित करता है।

यह यहा बता देना आवश्यक है कि मुखौटे वाले अभिनयो के लिए सर्वप्रथम साहित्य अयोध्या-काल (सन १३४९-१६४७ ईस्वी) मे सामने आया। लेकिन रामायण पर आधारभूत अनेक नाटको की तरह

उस समय जो नाटक लिखे गये उनकी कथावस्तु रामायण की छुटपुट घटनाओ तक ही सीमित रही और उस तरह की क्रमबद्धता का उनमे अभाव है, जैसी उसके बाद रचित द्वितीय राम राजा के मुखौटा-नाटक मे हम पाते है। यो प्रथम राम राजा से ठीक पहले राज करनेवाले धोनबरी के राजा ने भी रामायण की कुछ घटनाओ को पद्यबद्ध करने का प्रयास किया था। उनके बनाये हुए पद्य अब भी विद्यमान है।

लेकिन मुखौटेवाले अभिनय के बहुत पहले थाई देश में एक ऐसा अभिनय प्रचलित था, जिसे थाई भाषा मे हूंन (Hnang) कहते है। हून का अर्थ खाल है, और इस अभिनय मे रामायणकालीन सभी पात्रों को खाल काटकर तथा उसे पात्र विशेष के रग मे रगकर—जैसे राम को हरे रग में, लक्ष्मण को सुनहरी रंग मे, आदि—उस पात्र का रूप दिया जाता था। ये पात्र बहुत कुछ कठपुतलियों की तरह होते थे, फर्क सिर्फ यह था कि सभामच पर कठपुतलियो का नियत्रण जहा डोरी द्वारा किया जाता है, वहा इन्हे हाथ से हिलाया-डुलाया जाता था। इस तरह का अभिनय सामान्यतः रात्रिकालीन समारोहो मे किया जाता था। लेकिन अब तो यह समय के साथ लगभग विलीन ही हो गया है और इसमे काम आनेवाली खाल की मानवाकृतिया सग्रहालयो मे थाई कला के अद्‌भुत नमूनो के रूप मे ही शरण पा रही है। यहां यह बता देना भी आवश्यक है कि इस तरह का अभिनय थाई देश मे जावा से आया और वह सस्कृत के छायानृत्य का ही परिवर्त्तित रूप था।

ललितकलाओ पर भी हमे रामायण का पूरा प्रभाव दिखलाई पड़ता है। भगवान बुद्ध के रत्नजटित मदिर के गलियारे की दीवारो पर जो रामायण की घटनाओ के चित्र बनाये गए है उनका महत्व इस दृष्टि से सर्वाधिक है। इस चित्रावली मे कोई दोसौ चित्र है, जो प्रथम राम राजा के समय के बने हुए हैं। पखो, तकिये के खोलो वगैरा पर भी रामायणकालीन आकृतियां काढी जाती है तथा कमर पर बांधी जानेवाली पट्टी मे लगी धातु और सिगरेट की डिब्बी वगैरा पर उन्हे करीने से खोदा जाता है। इस सब पर से निश्चय ही हम यह कह सकते है कि राम की महाकीर्त्ति को लेकर ललित कलाओ में एक ऐसी विशिष्ट कला

का विकास हुआ है, जिसे निश्चित रूप से ललितकला का रामायण से प्रभावित रूप कहा जा सकता है। इस तथ्य से कोई इन्कार नही कर सकता कि थाई देश से राम-कीर्त्ति और थाई देश की सस्कृति के विभिन्न क्षेत्रो पर पडनेवाले उसके प्रभाव को हटा लिया जाय तो थाई देश अपने उच्च साहित्य की महानता से बहुत हद तक वंचित हो जायगा। यह राम-कीर्त्ति ही है, जिससे उसे अनुकरणीय व्यक्तियो की कल्पना और उत्तम शब्दावली तथा श्रेष्ठ विचारो और स्फूर्ति की सतत उपलब्धि होती रही है। यही कारण है कि पश्चिम की चकाचौध मे पूर्व का गौरवमय अतीत जब धीमा पड रहा है। ऐसे समय मे भी उसका काव्य-गान शिक्षित-अशिक्षित सभी तरह के लोगो को मत्रमुग्ध कर देता है।

राम की महिमा का जैसा बखान थाई देश मे पाया जाता है, उसपर रामायण का सीधा प्रभाव कभी नही पडा। राम-कीर्त्ति मे तो ऐसी कहानियो का समावेश है, जो उत्तर भारत से लेकर मलाया तक अनेक देशो मे लोकप्रिय है। इससे निश्चय ही यह स्पष्ट है कि थाई देश मे राम की कथा अनेक देशो मे होती हुई पहुची। जहातक कथा-वस्तु का सम्बन्ध है वह तो यद्यपि रामायण की मुख्य कथा से पूरी तरह मेल खाती है, तथापि विस्तार की बाते मूल कथा से एकदम भिन्न है और उससे मेल नही खाती। यही कारण है कि उसे पढते हुए हमे कुछ ऐसा लगने लगता है मानो राम का रामायण से बिल्कुल भिन्न कोई वर्णन पढ रहे है। सस्कृत रामायण का प्रारम्भ वाल्मीकि द्वारा नारद से किये गए प्रश्न से होता है, जबकि 'राम-कीर्त्ति' मे नारायण के तृतीय अवतार से कथा का आरम्भ किया गया है। इसका आधार 'नारायण सिप्पग' (नारायण के दस अवतार) नाम के प्राचीन ग्रथ पर है, जिसमे नारायण रूपी भगवान के इस क्रम से दस अवतारो का उल्लेख है—(१) वाराह, (२) कच्छप, (३) मत्स्य, (४) वृषभ, (५) त्रिपुट से शिवलिंग लेने के लिए तपस्या करनेवाला सन्यासी, (६) हिरण्यकश्यपु को मारने के लिए सिंह (नरसिंह), (७) राक्षस तावन (वलि) को छलने के लिए वामन (८) कृष्ण (९) अप्सरा (चौथे परिच्छेद के अनुसार) और (१०) राम। दूसरी रोचक विशेषता यह है कि रामायण के सभी

भारतीय वर्णनों मे जहा राम या नारायण को सभी देवताओं से ऊचा स्थान दिया गया है वहा राम-कीर्त्ति मे हम उन्हे देवताओ मे सबसे बडे माने जानेवाले ईश्वर से नीचे पाते है ।

राम-कीर्ति मे आये रामायणकालीन नामो के बारे मे भी सक्षेप में यह विचार कर लेना ठीक होगा कि मूल नामो से उनमें अन्तर क्यो है । राम-कीर्ति पुस्तक को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसमें व्यक्तियो और स्थानो के नामो के सम्बन्ध में तीन विशिष्ट पद्धतिया अपनाई गई है । प्रथम तो यह कि राम, हनुमान आदि कुछ नाम उनके मूल रूप मे ही रखे गये है । दूसरी यह कि मूल नामो को बिल्कुल बदल दिया गया है, जैसे मथरा को कुच्ची लिखा गया है, जो स्पष्टतया सस्कृत कुब्जी का बिगडा हुआ रूप है । तीसरी यह कि मूल नामो को सशोधित रूप मे लिखा गया है, जैसे शत्रुघ्न को शत्रुद और कुवेर को कुपेरन । ऐसे परिवर्तनो और सशोधनो का एक कारण भाषा की ध्वनि सम्बन्धी विशेपता भी हो सकता है । कभी-कभी दो व्यजनो के वीच आये 'अ' स्वर को निकालकर दोनो व्यजनो को ही सयुक्त कर लिया जाता है, इसके विपरीत अन्त मे आये 'अ' का बोलते वक्त हम उच्चारण नही करते—जैसाकि बगला भापा मे हम अक्सर देखते है । गरुड को इस प्रकार वहा ख्रुत कहा जाता है । इसके अलावा थाई भापा मूलत एकाक्षरी भापा होने के कारण और उसका झुकाव सही अक्षरविन्यास के बजाय शब्दध्वनि पर होने से शब्दो को उसमे अक्सर हम उनके सशोधित रूप मे पाते है तथा उनके उच्चारण मे भी सक्षिप्तीकरण की प्रवृत्ति है । इसी दृष्टि से लक्ष्मण को लक्षण लिखा जाता है, जो थाई भापा का एक सामान्य शब्द है, पर बोला खाली लक जाता है—यानी शब्द के सिर्फ पहले अक्षर की ध्वनि रखकर बाकी सबको छोड दिया जाता है । थाई भापा की दूसरी विशेपता यह है कि वर्णमाला के तीसरे और चौथे अक्षरो का उच्चारण एक ही तरह किया जाता है, जिनकी ध्वनि सस्कृत वर्णमाला के दूसरे अक्षर की तरह होती है । इसके अनुसार 'ग' 'घ' का उच्चारण सस्कृत के 'ख' की तरह होता है । रामायणकालीन नामो को सशोधित रूप देने मे यह भी एक

कारण रहा है। इसीलिए हम देखते है कि भरत को बरत लिखा गया है और उसका उच्चारण फोत होता है। प्रसगवश यह बतला देना ठीक होगा कि 'थ' का उच्चारण 'ओ' के हलके रूप मे किया जाता है।

लेकिन अनेक परिवर्तित और सशोधित नाम ऐसे हैं, जिनकी भाषा की ध्वनि-सम्बन्धी विशेषता से कोई सगति नही बैठती। इन नामो पर विचार करे तो हम रामायण के थाई रूप के स्रोतो के बहुत निकट पहुच जाते है, क्योकि उससे राम-कीर्ति की कथावस्तु पर पडे विविध प्रभावो का स्पष्ट भान हो जाता है। उदाहरण के लिए हम कुपेरन नाम को ले। थाई भाषा की अनेक रचनाओं मे हमे सस्कृत शब्द 'कुबेर' मिलता है, पर राम-कीर्ति मे धन-सम्पत्ति के देवता के लिए हर जगह कुपेरन शब्द ही आया है, जोकि तमिल भाषा का शब्द है और उनमे तमिल प्रभाव के अवशेष का सरलता से बोध होता है। इस तरह राम-कीर्ति में आये रामायणकालीन नामो का सूक्ष्म अध्ययन करने पर हमे इस बात का आसानी से पता चल सकता है कि थाई भाषा मे राम की गौरव-गाथा किन सूत्रो के आधार पर लिखी गई। लेकिन यह ऐसा विषय नही, जिसे भूमिका के अन्दर कुछ पक्तियो में पूरी तरह समझाया जा सके।

विषय-सूची

राम-कीर्ति

●

: १ :

अयोध्या का पहला राजा

बहुत दिन की बात है। ससार की बाल्यावस्था थी। चक्रवाळ पर्वत की चोटी पर एक राक्षस रहता था। उसका नाम हिरन्तयक्ष[1] था। उसका हिरण्यमय चेहरा ऐसा तम-तमाता था कि लोग देखकर ही डर जाते थे। उसे ईश्वर की ओर से वरदान मिला था कि उसको कोई पराजित न कर सकेगा, पर इतने से ही उसको सन्तोष न हुआ। उसने भूमि के तीन भागों अर्थात् जम्बूद्वीप, उत्तरकुरु और अमर गोयान को भूमि मे से काटकर चटाई के समान लपेट लिया और बगल में दबाकर पाताल लोक को चला गया।

परन्तु अपराजित होने का वर पाकर भी उसके नाश के दिन निकट आ गये। उसकी उद्दडता और धृष्टता ने देवताओं के हृदयों को भी कम्पायमान कर दिया। वे ईश्वर से संरक्षण के लिए याचना करने के हेतु कैलाश को चल पडे। ईश्वर तो स्वभावतः ही दयालु हैं। जब उन्होने तीन लोक के निवा-सियों के दुख के समाचार सुने तो उनका हृदय द्रवित हो गया। उन्होंने नारायण को बुलाया और कहा, "तुरन्त जाओ और ससार को हिरन्त के अत्याचार से मुक्त करो।" फलतः नारायण ने शूकर का रूप धारण किया और पाताल में उस

---

१. हिरण्याक्ष

स्थान पर जा पहुचे, जहा अपनेको सुरक्षित समझकर हिरत निवास करता था। उन दोनों मे घोर युद्ध हुआ। अन्त में नारायण की विजय हुई और हिरन्त मारा गया।

उसके वाद नारायण अपने निवास-स्थान क्षीरसागर को चले आये और वेद-गान मे लीन हो गये। जव नारायण की वेद-ध्वनि से चारो दिशाए गूज रही थी, ऐसे समय मे समुद्र के तल पर एक सुन्दर कमल का फूल प्रकट हुआ। उसकी सुगन्धित सुन्दर पत्तियो मे से एक वच्चा निकला, जिसका रूप अद्वितीय तथा मनोहर था। नारायण उस बच्चे को गोद मे लेकर ईश्वर से भेट कर आने के विचार से कैलाश की ओर चल पडे।

ईश्वर की आज्ञा हुई कि इस वालक को ससार का सवसे प्रथम सम्राट् नियुक्त किया जाय। उसने राक्षसों से संसार की रक्षा करने के लिए नारायण-वंश की नीव डाली।

यह निश्चित हुआ कि इस चमत्कृत वालक का शासन जम्बूद्वीप मे आरंभ होना चाहिए। इन्द्र को आज्ञा हुई कि इसके लिए एक सुन्दर राजधानी का निर्माण किया जाय।

ईश्वर की आज्ञा का पालन करने के लिए इन्द्र जम्बूद्वीप में आये और अचनगवि, युगाग्र, दाह और याग नाम के ऋषियों से मिले। उन्होने इन्द्र को परामर्श दिया कि हमारे निवास-स्थान द्वारावती में राजधानी वनाओ। तदनुसार नारायण-वंश के राजाओ की राजधानी, जहा द्वारावती का वन था, वहा वनाई गई। उसका नाम अयुध्या हुआ, क्योंकि अयोध्या शब्द उन चार अक्षरो से बनता है, जो इन चार ऋषियो के नाम के पहले अक्षर हैं।

बालक का नाम अनोमातन रक्खा गया और उसको अयोध्या के राज-सिंहासन पर बिठा दिया गया । लोग उसको नारायण का अवतार मानने लगे, क्योकि वह राक्षसों और दानवों से मनुष्यों की रक्षा करने के हेतु आया था। इस दिव्य कर्त्तव्य को पूर्णतया पालन करने के हेतु उसको चार साधन प्रदान किये गए---तीर, त्रिशूल, गदा और चक्र । इन्द्र ने इसके अतिरिक्त राजा को एक महारानी भी दी, जिसका नाम मणिकेसर था, जिससे अनोमातन की मृत्यु के पश्चात उसके वंश का नाश न हो सके । उनके अजपाल नाम का एक पुत्र उत्पन्न हुआ । जब अजपाल युवा हो गया तो अनोमातन ने अयोध्या का राज उसे दे दिया और स्वय स्वर्ग-लोक को चला गया ।

अजपाल ने भी अपने पिता के समान संसार को राक्षसों से सुरक्षित रखने के लिए इस प्रकार शासन किया कि देव और मनुष्य सभी सतुष्ट हो गये । इसी समय असुरब्रह्म नामक एक राक्षस था, जिसको किसी वरदान मे ईश्वर ने एक गदा दी थी। इस गदा को लेकर असुरब्रह्म अत्याचारी हो गया । उस समय राजा अजपाल ने मालीवग नामक एक दूसरे देव की सहायता से, जो सत्यपथ का अनुगामी था, ईश्वर से एक तलवार प्राप्त की और उस तलवार से असुरब्रह्म को मार डाला। अजपाल ने बहुत वर्षो तक यशपूर्वक राज किया और इसके उपरान्त वह भी स्वर्गवासी हो गया । उसके सुपुत्र दशरथ ने उसके पश्चात् वश-परम्परा को जारी रक्खा ।

राम-जन्म

अजपाल की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र दशरथ अयोध्या की गद्दी पर बैठा । उसके तीन रानिया थी । कौसुरिया, समुद्रा, कैय्यकेशी । यद्यपि उसको राज के सभी सुख प्राप्त थे और उसकी पत्निया भी हर प्रकार से पतिभक्ता थी, तथापि उसको एक शोक निरन्तर चिन्तित करता था । उसकी किसी भी रानी से कोई पुत्र न जन्मा, जो उसका उत्तराधिकारी हो सकता ।

अन्त मे उसने चार ऋषियो अर्थात् वशिष्ठ, स्वमित्र, वज्जवग्ग और भरद्वाज से परामर्श किया । यद्यपि वे हर प्रकार से राजा की सहायता करने के इच्छुक थे, तथापि उनमें ऐसी शक्ति न थी कि वे उस वश के अनुरूप एक उत्तराधिकारी की उत्पत्ति करा सके, जिससे नारायण-वश की परम्परा जारी रखी जा सके तथा जिसके द्वारा राक्षसो से ससार की रक्षा हो सके ।

उस समय राक्षस लोग प्रबल हो रहे थे और सर्वत्र ससार के मनुष्यो को पीडा दे रहे थे । अयोध्या की गद्दी पर ऐसा कोई राजा नही था, जो राक्षसो का दमन कर सके ।

एक ऋषि थे सिंगमुनि । उनका पुत्र था कलैकोटी । वह हिरनी के पेट से पैदा हुआ था । उसका शरीर तो मनुष्य का-सा था, परन्तु उसका मुंह हिरन का-सा था । बाल्यावस्था मे

उसका तप इतना उग्र था कि रोमबत्तन नामक देश मे जहां वह तपस्या करता था, उस तप के तेज से घोर अकाल पड़ गया। उस देश के राजा ने अपनी कन्या को भेजा कि वह ऋषि-पुत्र के तप को भंग करके उसे गृहस्थाश्रम मे प्रवेश करने के लिए प्रेरित करे। स्त्री के लावण्य ने ऋषिपुत्र को सहज ही प्रभावित कर दिया। ऋषि ने अपना तप छोड़ दिया। फलस्वरूप देश मे विपुल वर्षा हो गई और वह ऋषि-पुत्र जामाता के रूप मे राजमहलों मे रहने लगा।

राजा दशरथ के निमत्रण पर वह ऋषि-पुत्र अयोध्या आया और सुवेष्टियज्ञ की तैयारी में लग गया। उन चार ऋषियों को लेकर वह कैलाश पर्वत पर गया। उस समय कुछ देवों के प्रताप से राक्षसों को विशेष वरदान मिले हुए थे, जिनके द्वारा वे मनुष्यों पर बडे-बड़े अत्याचार कर रहे थे। परिणाम-स्वरूप जगत् उनकी उद्दडता से महती पीड़ा का अनुभव कर रहा था। उनकी शक्ति इतनी बढ गई कि किसी में उनको पराजित करने का सामर्थ्य न था। अतः ऋषि कलैकोटी ने ईश्वर से प्रार्थना की कि महाराज, आप नारायण को मृत्युलोक मे भेजिये, जिससे वह दशरथ के पुत्र के रूप में अवतार ले और पृथ्वी को विपत्ति से मुक्त करावे।

नारायण को जब इस काम के लिए प्रेरणा दी गई तो वह राजी हो गये। परन्तु उनकी शर्त यह थी कि लक्ष्मी, अनन्तनाग, गदा, चक्र और शख, ये भी उनके साथ-साथ अवतार ले। ईश्वर ने उनकी इस शर्त को मान लिया और उनको भी अवतार लेने की आज्ञा मिल गई।

ईश्वर ने ऋषियो से कहा कि आप चलकर यज्ञ आरम्भ

करे। यज्ञ की अग्नि मे से एक देवता का प्रादुर्भाव होगा। उनके सिर पर एक पात्र होगा और उसमे चार रोटिया होगी। उसी समय एक कौआ उस पात्र पर झपट्टा मारेगा और आधी रोटी लेकर दक्षिण की ओर भाग जायगा। शेप रोटियो को दशरथ की रानियो मे बाट दिया जाय। उसके फल-स्वरूप रानियो के चार पुत्र उत्पन्न होगे।

ईश्वर की आज्ञा का अक्षरशः पालन किया गया और जैसाकि पूर्व-कथित था वैसा ही ठीक-ठीक घटित हुआ। नारायण ने कौसुरिया के पुत्र के रूप मे अवतार लिया। वह हरे वर्ण के थे। चक्र ने कैय्यकेशी के पेट से भरत के रूप मे जन्म लिया। वह रक्त वर्ण के थे। नाग और शख दोनो ने सयुक्त होकर समुद्रा के पेट से लक्ष्मण के रूप मे जन्म लिया। वह पीत वर्ण के थे। गदा ने भी समुद्रा के पेट से जन्म लिया। उसका नाम शत्रुद था। यह बैगनी वर्ण के थे। इन चार पुत्रो मे राम सबसे बडे थे। उनके पश्चात् भरत, लक्ष्मण और शत्रुद क्रमश एक दूसरे से छोटे थे।

३ :

लका की उत्पत्ति

भविष्यवाणी के अनुसार देवता के प्रकट होते ही कौआ भी प्रकट हुआ और वह आधी रोटी लेकर दक्षिण की ओर भाग गया। इसी रोटी से लक्ष्मी की सीता के रूप मे उत्पत्ति होनी थी।

दक्षिण मे राक्षसों की राजधानी लंका थी। इस कौए की लंका के अधिपति दशकठ ने इसलिए भेजा था कि वह दैवी भोजन मे से एक अश ले आवे और उसकी महारानी मण्डो उसको खा सके।

यहा प्रसग-वश हमको यह भी बताने की आवश्यकता है कि दशकठ को लका की गद्दी किस प्रकार मिली और मण्डो किस प्रकार उसकी रानी हुई।

पहले लका का नाम रगका था। नीलकाल पर्वत के ऊपर एक कौए का बहुत बडा घोसला था, जिसके कारण उसका यह नाम पडा।[1] सहपति (सहस्रपति) ब्रह्मा ने इसको अपने एक भक्त सहमलिवन के लिए बसाया था और वही लका का पहला राजा हुआ, परन्तु नारायण के डर से उसने अपनी राजधानी छोड़ दी और पाताल देश मे रहने लगा।

ब्रह्मा ने देखा कि उसकी सृष्टि पर कोई शासन करनेवाला नही रहा तो उसने विश्वकर्मा को आज्ञा दी कि नीलकाल पर्वत पर एक अति सुन्दर नगर बसाओ। इस नगर का नाम विजय लका पड़ा और ब्रह्मा ने राज का कार्य अपने एक दूसरे भक्त के सुपुर्द किया, जिसका नाम चतुर्वक्र था। उसकी रानी का नाम था मालिका। चतुर्वक्र की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र लस्तियन् गद्दी पर बैठा। यह बड़ा शक्तिशाली राक्षस था। इसके पाच रानिया थी। श्री सुनन्दा कुपेरन की मा थी। चित्रमाली देवनासुर की, स्वर्णमालै

---

१. स्यामी भाषा मे 'का' का अर्थ है कौआ और 'रग' का अर्थ है घोसला।

अगधाता की, वग्प्रभा मारन की। पाचवी रानी का नाम ग्जटा था। उसके छ पुत्र और एक पुत्री थी। पुत्रो का नाम था— दगकठ, कुम्भकर्ण, बिभेष, दुग्नन, खर और गुमनखा।

उस समय पाताल का राजा कालनाग था। हम ऊपर वता चुके हैं कि लका के पहले राजा महमल्लिवन ने भागकर पाताल में गरण ली थी। कालनाग को उस राजा का पाताल-लोक मे रहना अभीष्ट न था। उसको भय था कि कही यह राजा इतना वलवान् न हो जाय कि मुझे गद्दी से उतार-कर स्वय ही राजा वन वैठे। अत अवसर पाकर उसने सह-मलिवन पर चढाई कर दी। उस समय सहमलिवन की लका के वर्तमान राजा से मैत्री हो गई थी और उसने लकाधिपति चतुर्वक्र की अधीनता भी स्वीकार कर ली थी। अतः इस अवसर पर उसने लस्तियन् से सहायता की याचना की। उसकी सहायता से कालनाग सहज ही पराजित हो गया। जब कालनाग ने देखा कि लस्तियन् के गस्त्र से उसका जीवन समाप्त होने से वच सकेगा तो उसने अपनी लडकी काल-अग्गी लस्तियन् को समर्पित कर दी और अपनी जान लेकर भाग गया। लस्तियन् ने इस लडकी को ले लिया और अपने पुत्र दशकठ से उसका विवाह कर दिया।

जब लस्तियन् वृद्ध हुआ तो उसने अपना राज अपने दशो पुत्रों मे वाट दिया, जिससे उसकी मृत्यु के उपरान्त उनमे परस्पर युद्ध न हो। यह वटवारा इस प्रकार हुआ—दग-कंठ लका का राजा हुआ, कुपेरन कालचक्र का अधिपति वना, और पुष्पक विमान भी उसीके हाथ आया, देवनासुर के भाग मे चक्रवाळ का राज आया, अगधाता वादकन का राजा

हुआ। मारन सीलाश का, दवर रोमगल का, दुशन चारिक का—जो जनपद मे है, तिशिरा मज्जदारी का राजा हुआ। सम्मनक्खा का विवाह राजा जिव्हा से कर दिया गया।

: ४ .

दशकंठ का हाल

दशकठ अपने सगे और सौतेले भाइयो मे सवसे अधिक शक्तिशाली था। उसका शासन इतना कडा था कि क्या सेना और क्या प्रजा, सभीको उसकी आज्ञा अक्षरशः माननी पड़ती थी। परन्तु यह शक्ति उसने इस जन्म मे उपार्जित नही की थी। वस्तुत किसी पूर्व-जन्म मे जव वह स्वर्ग मे रहा करता था, किसी सुकर्म के फलस्वरूप उसको यह शक्ति प्राप्त हुई थी।

कैलाश पर्वत पर एक देव रहता था, जिसका नाम नन्दक था। नन्दक का काम था कि जो देव ईश्वर के दर्शनार्थ कैलाश पर्वत पर आते, उनके वह पैर धोता। जो देव कैलाश आते, वे अपनी रुचि के अनुसार इस सेवा-कार्य मे नन्दक को छेडा करते। कोई उसके सिर पर चपत मारता तो कोई उसके वाल नोचता। इस प्रकार भिन्न-भिन्न रीति से वे उसके साथ विनोद किया करते थे। परिणाम यह हुआ कि उसके सिर पर एक भी वाल शेष न रह गया और वह गजा हो गया। अत्यन्त पीड़ित होकर उसने ईश्वर की शरण ली और

प्रार्थना की कि महाराज, मुझे ऐसा वरदान दीजिए कि मैं जिसकी ओर अगुली से सकेत कर दूं वह वही गिर कर मृत्यु का ग्रास वन जाय।

वहुत दिनो की निरन्तर सेवा से प्रसन्न होकर ईश्वर ने नन्दक की प्रार्थना स्वीकार कर ली और उसको अपना इच्छित वरदान मिल गया। देवताओ को इस वरदान का पता न था। वे अपनी पुरानी आदत के अनुसार उसे परेशान करते और नन्दक को मिले वरदान के फलस्वरूप उ हे अपने प्राणो से हाथ धोने पडते।

इन्द्र ने जव देखा कि वहुत-से देवता इस प्रकार मर गये हैं तो ईश्वर से प्रार्थना की कि महाराज, किसी प्रकार अपने इस भक्त से इस वरदान को वापस ले। तव ईश्वर ने नारायण को आदेश दिया कि वह नन्दक को परास्त करके देवों की रक्षा करे। नारायण ने अप्सरा का रूप धारण किया और नन्दक को मोह मे फसाने लगे। नन्दक मोहित हो गया और उसने अप्सरा को प्राप्त करना चाहा, लेकिन अप्सरा ने कहा, "पहले तुम मेरे साथ नाचो, उसके वाद मैं तुम्हारे साथ विवाह कर लूगी। नन्दक इसके लिए राजी हो गया और नाच आरभ हुआ। नाच मे अप्सरा ने अपनी अगुली अपने पैरो की ओर दिखाई। नाच की धुन मे नन्दक को अपने वरदान का स्मरण नही रहा और उसने भी अनुकरण के रूप मे अपनी अगुली अपने पैरो की ओर दिखाई। फलत उसकी टागें टूट गई। अप्सरा ने अपना असली रूप धारण कर लिया और नारायण नन्दक को मारने दौडे। नन्दक ने नारायण को वहुत वुरा-भला कहा और वोला कि तुमको मेरे साथ इस प्रकार धोखा नही करना

चाहिए था। यह वीरोचित काम नही है। नारायण ने कहा कि अगले जन्म मे तुम्हारे दस सिर और बीस भुजाए होंगी, परन्तु मैं तुमको एक सिर और दो भुजाए धारण करके ही मारूंगा। इस प्रकार नारायण द्वारा दिये गए पूर्वजन्म के वरदान के फलस्वरूप दशकठ इतना बलशाली हुआ।

जब ईश्वर ने देखा कि दशकठ के रूप मे नन्दक का अवतार हो गया है तो वह सोचने लगे कि नारायण को भी अवतार लेने के लिए अवसर दिया जाय। उन्होने एक देव्र वैस्सुन्गान को आज्ञा दी कि तुम दशकठ के भाई के रूप मे अवतार लो, जिससे नारायण राम का अवतार धारण करके लकेश को मारने आवे तो उनकी सहायता कर सको। वैस्सुन्गान ने विभेक के रूप मे जन्म लिया। उसके पास एक चमत्कृत शीशा था, जिसमे वह भविष्य की सब घटनाओं को यथावत् देख सकता था। यही कारण था कि विभेक को दशकठ के सभी षड्यन्त्रो का पता लग जाता था और उसी भेद को प्रकाशित करके विभेक ने लका के राजा रावण का विनाश करने मे राम की सहायता की।

: ५ :

दशकंठ और मण्डो का विवाह

दशकठ का पहला विवाह पाताल की राजकुमारी काल-अग्गी के साथ हुआ था, परन्तु उसकी दूसरी रानी मण्डो थी, जिसके साथ उसका विवाह ईश्वर की प्रेरणा से हुआ।

मण्डो साधारण स्त्री न थी। उसका जन्म उन चार ऋषियो के चमत्कार के कारण हुआ था, जो हिमालय के जगलो मे तपस्या करते थे। ये ऋषि गायो का दूध पिया करते थे। ये गाये स्वय रोज सुवह आकर शीशे के पात्र मे अपना दूध डाल जाया करती थी। जब ऋषि दूध पी चुकते तो जो कुछ बचता वह एक निकट मे रहनेवाली मेडकी को दे दिया जाता था।

उस समय पाताल-लोक मे एक नागकन्या रहती थी, जो अत्यन्त विषयी थी। इसकी मदन-कामना कभी सन्तुष्ट नही हो सकती थी। इसलिए वह पाताल-लोक से निकल-कर मृत्युलोक मे आ गई। यहा उसको कोई ऐसा पुरुष नही मिला, जो उसकी काम-वासना की तृप्ति कर सके। अन्त में उसको एक साप मिला। उसने साप से कहा कि तू मेरे साथ सहवास कर।

चारो ऋषि अपने दैनिक कृत्यो के लिए जगल से फल-फूल लेकर आ रहे थे तो उन्होंने इस नाग-कन्या को कुकृत्य मे लवलीन देखा। उसकी इस दुरवस्थिति का बोध कराने के लिए उन्होंने उसकी पूछ मे कुछ मार दिया। नाग-कन्या को लज्जा आ गई कि इन ऋषियो ने मेरे दुष्कृत्य को देख लिया। अतः वह वहा से भागकर वापस पाताल-लोक को चली गई, परन्तु यह सोचती रही कि इन ऋषियो से इस अपमान का बदला किस प्रकार लेना चाहिए। अवसर पाकर वह फिर मृत्युलोक में आ गई और ऋषियो के दूध के पात्र मे विष मिला दिया।

मेंडकी, जो ऋषियो से वचा हुआ दूध पीती थी, देख

रही थी कि उस दुष्टा ने ऋषियों का वध करने के हेतु दूध में विष मिला दिया है। वह ऋषियों की बड़ी भक्त थी। इसलिए वह पात्र में कूद पड़ी और दूध के विषाक्त होने के कारण तुरंत मर गई।

चारों ऋषि नित्य की भांति जब दूध पीने आये तो देखा कि मरी हुई मेंडकी दूध पर तैर रही है। उन्होंने समझा कि मेंडकी दूध के लालच मे फंसकर मर गई। उनको उस पर दया आई और उन्होंने उसे मंत्रों द्वारा पुनर्जीवित कर दिया।

मेंडकी ने देखा कि ऋषियों ने मुझे लालची समझकर मेरे साथ अन्याय किया है, अतः उसने ऋषियों को सारा हाल कह सुनाया। यह सुनकर ऋषि उसपर बडे प्रसन्न हुए और कृतज्ञता प्रकट करके उसको एक वर दिया, जिससे वह एक सुन्दरी कन्या बन गई। वही मण्डो थी। ऋषियों ने मण्डो को ईश्वर को समर्पित कर दिया और ईश्वर ने मण्डो को उमा को दे दिया कि वह उससे सेविका का काम लिया करें।

इधर कैलाश पर्वत पर एक दूसरी ही घटना घटी। दिशाओं का एक अधिपति देव वीरुल्हक ईश्वर के दर्शनार्थ ऊपर चढ़ रहा था। यह सोचकर कि ईश्वर महाराज पर्वत की चोटी पर देवताओं का नमस्कार ग्रहण कर रहे हैं, वह सीढियों पर चढता जा रहा था और हर सीढी पर नमस्कार के लिए सिर झुकाता जाता था।

संयोग से ईश्वर महाराज वहां न थे। एक देव था सरभू। सरभू ने देखा कि ईश्वर तो यहां हैं नहीं, यह किसे नमस्कार कर रहा है? उसने वीरुल्हक को चिढ़ाना शुरू

किया। वीरल्हक ने सिर उठाया तो सरभू पर उसकी दृष्टि पडी। वीरल्हक को उसपर बडा क्रोध आया। उसके गले मे सापो का हार था। उसने उनमे से एक साप सरभू के ऊपर फेंक दिया। इससे सरभू तुरत मर गया। परन्तु साप ऐसे जोर से फेका गया था कि पर्वत का एक कोना जमीन में नीचे धस गया।

जब ईश्वर ने देखा कि पर्वत का एक कोना धसा हुआ है तो उन्होने आदेश दिया कि जो कोई इस पहाड को उठाकर पूर्व की भाति ठीक कर देगा उसको मुंहमागा इनाम दिया जायगा। देवो ने बहुत यत्न किया, परन्तु कैलाश टस-से-मस न हुआ।

तब ईश्वर ने दशकठ को बुलाया। उसने पहाड को उठाने का वचन दिया। उसने अपने शरीर को ब्रह्मा के शरीर के बराबर बडा लिया और पूर्ण बल से कैलाश को उठाने लगा। उसे सफलता प्राप्त हो गई। उसने पुरस्कार मे ईश्वर से उमा की माग की। ईश्वर अपने वचन को नही टाल सकते थे, अतः उमा उसके हवाले कर दी गई।

दशकठ ने उमा को पकड लिया, परन्तु उसे अनुभव हुआ कि उमा का शरीर अग्नि के समान तप्त हो रहा है; फिर भी वह उमा को सिर पर रखकर लकापुरी को चला।

देवो ने देखा कि ईश्वर के इस प्रतिज्ञा-पालन से तो बड़ा अनिष्ट होगा। वे सोचने लगे कि किसी प्रकार उमा को फिर ईश्वर के हवाले करना चाहिए। तब नारायण ने एक बूढे माली का रूप धारण किया और बाग में एक वृक्ष को इस प्रकार लगाने लगे कि जिसका मूल ऊपर को रहे। जब

दशकठ ने देखा तो वह उनको झिड़कने लगा—"अरे मूर्ख, तू यह क्या कर रहा है ? मूल ऊपर रखकर पत्तियों को जमीन मे गाड़कर पेड रोप रहा है ?" इसपर नारायण ने उत्तर दिया कि तू तो मुझसे भी अधिक मूर्ख है, जो एक सतप्त दुष्टा स्त्री को, जिसका शरीर जल रहा है, कधे पर उठाये फिरता है । यह तो तेरे वश का विध्वस कर डालेगी । तुझे तो एक ऐसी अच्छी स्त्री मागनी चाहिए, जैसी मण्डो है ।

दशकंठ ने यह सुनकर उमा को तो लौटा दिया और उसके स्थान मे मण्डो को माग लिया ।

जब वह आकाश-मार्ग से लंका को जा रहा था तो खीद्-खिन् (किष्किन्धा) के राजा बाली की मण्डो पर निगाह पड़ी । उसने कहा कि तू मेरे महल के ऊपर से यों क्यों उड़ा जा रहा है । पहले मुझसे युद्ध मे निपटता जा । दशकठ यह आह्वान सुनकर उतर आया । दोनों मे युद्ध हुआ । दशकठ हार गया और मण्डो बाली के हाथ लग गई, उसकी स्त्री बन गई और दशकंठ पराजित होकर लका को लौट आया । अन्त मे उसके गुरु अंगद के बाली को समझाने-बुझाने पर मण्डो दशकठ को लौटा दी गई ।

बाली और सुग्रीव की उत्पत्ति

साकेत का राजा गौतम सन्तानहीन था। अत राज से उसको कुछ सन्तोप नही होता था। अन्त मे वह राज को त्यागकर सन्यासी हो गया। उसने दो सहस्र वर्षो तक तपस्या की। उसकी दाढी इतनी बढ गई कि गोद को छूने लगी और दो बया पक्षियो ने उसमे घोंसला बना लिया। एक दिन बया की मादा ने कुछ अडे दिये। चिड्डे ने चिडिया से कहा कि तू अण्डे को से और मैं हिमवान पर जाकर झील मे से कुछ भोजन की वस्तु ले आऊ।

झील मे सुन्दर कमल खिल रहे थे। वह उस सौन्दर्य पर मोहित हो गया और एक कमल के ऊपर जा बैठा, जो पूर्ण विकसित हो रहा था। फूल के चारो ओर उसे पर्याप्त भोजन मिल गया और वह इस नये स्थान के सौन्दर्य में इतना मुग्ध हो गया कि उसे यह याद नही रहा कि सध्याकाल निकट आ रहा है। सन्ध्या आई तो कमल की पखुडिया बन्द हो गई और वह पक्षी उसमे कैद हो गया।

दूसरे दिन जब वह घर लौटा तो उसका शरीर कमल की सुगध से सुगन्धित हो रहा था। उसकी स्त्री ने उसको सूघा और समझा कि उसके पति ने पिछली रात किसी अन्य चिडिया के सहवास मे बिताई है। वह अपने पति को दोष देने लगी। पति ने कसम खाई कि यह बात बिलकुल

झूठ है। यदि मैं झूठ कहता हू तो इस साधू के सारे पाप मेरे ऊपर आ जाय।"

यह 'पाप' का शब्द सुनकर गोतम को बड़ा दुःख हुआ। वह तो यह समझता था कि मैंने कभी कोई पाप किया ही नही है। उसने चिड़िया से पूछा। उसने बताया कि उसका नि सन्तान होना ही उसका पाप है।

गोतम ने तपस्या छोड़कर एक यज्ञ रचा और यज्ञ की अग्नि मे से एक सुन्दर कन्या उत्पन्न हुई, जिसका नाम काल-अचना था। गोतम ने उसके साथ विवाह कर लिया। उससे उसके एक लड़की हुई। पिता ने उसका नाम 'स्वाहा' रक्खा।

इधर इन्द्र और अन्य देवता इस सोच मे थे कि हम अपने कर्मो का बटवारा किस प्रकार करें कि जिससे मृत्यु-लोक में सैनिकों के रूप में जन्म ले, जो लड़ाई में परस्पर सहायता कर सकें। उनकी दृष्टि काल-अचना पर पड़ी। इन्द्र नीचे आया और अपनी दैवी शक्ति से उसको गर्भवती बना दिया। कुछ दिनों के पश्चात् उनके पुत्र हुआ, उसका नाम काकाश रक्खा गया। उसके कुछ काल बाद आदित्य भी उधर आ गये और उन्होने उससे एक दूसरा पुत्र उत्पन्न किया, जिसका नाम सुग्रीव हुआ। गोतम को कुछ पता ही न चला कि ये पुत्र किसके हैं। उसने उन दोनों को अपना ही पुत्र मान लिया, परन्तु स्वाहा तो अपनी माता के दुष्कृत्य की जानकार थी।

एक दिन गौतम नहाने जा रहे थे। सुग्रीव गोद में था। काकाश कंधे पर बैठा था और स्वाहा उंगली पकड़े जा रही

थी। उस समय स्वाहा के हृदय मे डाह उठी। वह सोचने लगी कि मेरा पिता अपनी सतान को तो पैदल चला रहा है और दूसरो के वच्चो को गोद में ले रहा है। गोतम को इस वात पर आश्चर्य हुआ। उन्होने स्वाहा से पूछा तो उसने सव वात पिता को वता दी। परतु गोतम को इसपर विश्वास नही हुआ कि मेरी पत्नी इतनी पापिनी है। वह उन सव बच्चो को नदी पर ले गया और उनको नदी में फेंककर कहने लगा कि जो मेरी सच्ची सतान होगी वह तैरकर मेरे पास लौट आयगी और जो दूसरे किसीकी सतान होगी वह वदर बनकर जगल में चली जायगी। परिणामस्वरूप काकाश तथा सुग्रीव वदर बनकर जगल मे रहने लगे।

गोतम घर लौटे तो उन्होने अपनी स्त्री को शाप दिया कि तू पत्थर वन जा। जव नारायण राक्षसों का सहार करने के लिए ससार में अवतरित हो और लका पर चढाई करें तव तू सेतु के वाधने मे काम आवेगी और सदा समुद्र मे डूवी रहेगी।

काल-अचना को अपनी लड़की स्वाहा पर वडा गुस्सा आया, क्योंकि उसने उसका भेद खोल दिया था। उसने उसे शाप दिया कि तू सदा एक टाग पर खडी रहेगी, एक हाथ में वृक्ष की शाखा पकड़े रहेगी और वायुमात्र ही तेरा भोजन होगा। तेरा शाप तव छूटेगा जव तू एक अतुल वलधारी बन्दर को उत्पन्न करेगी।

जब इन्द्र और आदित्य ने देखा कि हमारी सतान इस प्रकार भटक रही है तो उन्होने उनके लिए एक सुन्दर नगर बसाया, जिसका नाम खीद्खिन् था। फिर उन्होने मन्त्र द्वारा

संसार-भर के बन्दरों को बुलाया और आदेश दिया कि तुम सब यही बस जाओ और काकाश को, जो बडा था, अपना राजा बना लो।

अब एक घटना हुई, जिसके कारण काकाश और सुग्रीव की ख्याति बढ गई। स्वर्ग में उस समय वसन्त ऋतु थी और समस्त देवगण वसन्तोत्सव मना रहे थे। समुद्र की देवी मणिमेखला भी वहा आने को थी। उसके पास एक दैवी मणि थी, जिसकी ख्याति ससार-भर मे फैली हुई थी। एक अपूर्व बलशाली असुर, जिसका नाम रामसुर था, उसने मणिमेखला को मार्ग मे मणि से खेलते हुए देखा। उसने चाहा कि मणि को ले ले। अतः उसने उस देवी का पीछा किया। रामसुर अत्यन्त बली था। अतः सब देवी-देवता डरकर अपने-अपने घरों को भाग गये, परन्तु अपने पीछे एक बली असुर को दौड़ता देखकर मणिमेखला को आनन्द आ गया और वह अपनी मणि से असुर को चिढाने लगी। रामसुर बहुत दौड़ा पर फिर भी मणिमेखला उसके हाथ नही आई। मणिमेखला उस मणि को उसकी ओर करती, पर वह उसके इतनी पास न आती कि असुर उसे पकड़ सके। इस तरह करने से वह क्रोध से भर गया और अपना परशु फैंककर उसको मारना चाहा। परन्तु परशु उसका कुछ भी न बिगाड़ कर सका। उसपर उसका क्रोध और भी बढ गया और वह क्रोध के मारे पागल हो गया।

उसी समय एक और अर्जुन नाम का बली देव उधर होकर गुजरा। यह देख असुर को अपना क्रोध उतारने के लिए एक और व्यक्ति मिल गया और उसने अर्जुन को सुमेरु पर्वत पर

पकड लिया। इस प्रकार अपने क्रोध को ठण्डा करके रामसुर अपने स्थान पर वापस चला गया।

इधर जब ईश्वर ने देखा कि सुमेरु का कोना झुका हुआ है, तो उन्होंने उसको ठीक करने के लिए सब देवताओ को बुलाया। उन्होने मेरु को साप से बांधा और खीचने लगे, परन्तु उनको सफलता न मिली। मेरु पर्वत पूर्ववत् झुका ही रहा। यह देख सुग्रीव ने अपनी सेवाए इसके लिए ईश्वर को अर्पित की। उसने साप की नाभि को ज़रा दबाया तो साप को गुलगुली लगी। उसने अपने शरीर से मेरु जकड लिया। काकाश ने एक ओर से कधा दिया और सुमेरु ठीक हो गया। ऐसे बल का प्रदर्शन देखकर ईश्वर दोनो भाइयो पर बडे प्रसन्न हुए और उनको पुरस्कार देने का विचार किया। काकाश को एक त्रिशूल मिला और उसका नाम वाली रखा गया। सुग्रीव उस समय उपस्थित न था। अत. उसके लिए एक रूपवती स्त्री तारा उसके भाई बाली को दी गई। बाली ने तारा को एक हाडी मे रख दिया। यह नारायण को बुरा लगा। उन्होने कहा कि किसी युवती को किसी युवक को सौपना ऐसा ही है जैसे किसी भौरे को कोई फूल देना। इसपर बाली ने आश्वासन दिया कि मैं अपने बचन का पालन करूगा। यदि न करू तो मैं राम के बाणो से मारा जाऊ।

बाली घर आया तो तारा के रूप पर मुग्ध हो गया। उसपर तारा के रूप का ऐसा प्रभाव पडा कि वह अपने वचन को भूल गया और तारा को सुग्रीव को न देकर उसे उसने अपने ही घर मे डाल लिया।

: ७ :

हनुमान का जन्म

जब बाली खीदखिन की गद्दी पर जम बैठा तो उसका एक दूसरे बलवान् बन्दर से परिचय हुआ, जिसका नाम हनुमान था। यह बाली का भानजा होता था, क्योंकि यह बाली की सौतेली बहन 'स्वाहा' का बेटा था।

यह कथा पीछे आ गई है कि स्वाहा को उसकी माता काल-अचना ने शाप दिया था कि जबतक कि इसके एक पुत्र न हो जाय वह एक टाग के बल एक हाथ मे वृक्ष की शाखा लिये खडी रहेगी। ईश्वर ने उसकी दयनीय अवस्था देखी तो उन्हें उसपर तरस आ गया। इसके अतिरिक्त उन्होने यह भी सोचा कि क्यों न इसीके द्वारा राम की सहायता का साधन उपस्थित किया जाय। अत. ईश्वर ने अपनी तथा अपने सब दैवी शस्त्रों की कुछ शक्ति को अलग किया और वायु को आदेश दिया कि तुम इन सब शक्तियों को ले जाकर स्वाहा के मुख मे भर दो, जिससे वह एक ऐसा पुत्र जन सके, जिसमे सब शस्त्रों की शक्ति एकत्र हो जाय। गदा को उसकी रीढ की हड्डी बना दो, जिससे वह आकाश मे यात्रा कर सके। त्रिशूल से उसका शरीर तथा उसके हाथ और पैर बन जाय और वह शस्त्र सदा उसकी छाती से चिपका रहे, जिससे समय पर उसका प्रयोग किया जा सके। चक्र से उसका सिर बने और वायु उसका पिता बने।

वायु ने तुरन्त ईश्वर की आज्ञा का पालन किया और स्वाहा गर्भवती हो गई। तीस मास के पश्चात् उसके एक सफेद बन्दर उत्पन्न हुआ, जो सोलह साल के लड़के के समान शक्तिशाली था। परन्तु वह साधारण रीति से नही जन्मा। उसका जन्म उसकी माता के मुख से हुआ। उसके पिता वायु ने उसका नाम हनुमान रखा। उसकी माता ने उसे वताया कि तुम्हारे शरीर पर कुछ विशेष चिह्न हैं, अर्थात् कानो में दो बालिया, दो चमकदार दात और एक श्वेत घुंघराला बाल। इनको नारायण के सिवा और कोई नही देख सकता है। जिस व्यक्ति को ये चिह्न दिखाई दे जाय, उसीको तुम नारायण का अवतार समझकर उसकी सेवा करना। इस पुत्र के जन्म के उपरात स्वाहा का शाप छूट गया।

एक दिन हनुमान वाग मे स्वभावत वन्दरों के समान खेल रहा था। वह वाग उमा का था। उमा ने देखा कि यह बंदर तो बाग मे तोड-फोड कर रहा है, तो उसने उसे शाप दिया कि आज से तेरी शक्ति आधी हो जाय, परन्तु जव हनुमान ने उमा से प्रार्थना की तो उमा ने कहा, "अच्छा जिस दिन नारायण राम के रूप मे अवतार लेकर तुम्हारे शरीर को सिर से पैर तक छुयेगे उसी दिन तुम्हे अपनी पुरानी शक्ति ज्यों-की-ज्यो प्राप्त हो जायगी।"

कुछ दिनो के बाद हनुमान का पिता वायु उसे देखने आया और वह उसे ईश्वर के पास ले गया। ईश्वर ने उसे अतर्धान होने की विद्या सिखाई और उसे अमर होने का वरदान भी दिया।

हनुमान वाली और सुग्रीव दोनों का भानजा था, इसीलिए

ईश्वर ने उन दोनों को भी कैलाश पर बुलाया और उनका हनुमान से परिचय करा दिया। ईश्वर ने अपने चमड़े से बाली की सहायता के लिए एक और बंदर उत्पन्न किया, जिसका नाम था जम्बुवान। यह बड़ा अच्छा चिकित्सक था।

बाली और सुग्रीव के कैलाश पहुंचने पर ईश्वर ने उनको इस बंदर को दिया और कहा कि इसको पुत्र के समान रक्खो। यों हनुमान और जम्बुवान् दोनों बाली और सुग्रीव के साथ खीद्खिन् को चले गये।

अंगद की उत्पत्ति

जब मण्डो बाली के पास से दशकंठ के पास आई तो उस समय वह गर्भवती थी। बाली के कहने से अंगद ने उसके गर्भाशय से गर्भ निकालकर एक बकरी के गर्भाशय में रख दिया। जब जन्म का समय आया तो उसने बकरी के पेट से निकाल लिया और उसे अपना ही नाम अंगद देकर उसके असली पिता बाली को लौटा दिया।

जब वह बच्चा दस साल का था तो स्नान कराने उसे नदी पर ले गये। वहां दशकंठ ने इसे देखा और सोचा कि जबतक यह बालक जीवित है, मण्डो के दोष का चिह्न बना ही रहेगा। अतः इसे मार डालना चाहिए। इसलिए दशकंठ ने एक केंकड़े का रूप धारण कर लिया और जल मे जा

छिपा। बन्दरो को इसका पता चल गया, परन्तु वे भरसक प्रयत्न करने पर भी उसे पकड़ न सके।

बाली को जब इसकी खबर हुई तो वह वहां आया। उसे देखते ही लकेश ने अपना निज रूप धारण कर लिया और दोनो मे युद्ध होने लगा। दशकठ हार गया और उसे बन्दी बना लिया गया। सारे बदर उसकी हँसी उडाने लगे। सात दिन तक घोर अपमान सहने के पश्चात् दशकठ को छोड दिया गया और वह अपना-सा मुंह लेकर लका को वापस चला गया।

: ६ :

दशकंठ को वरदान

दो बार बाली से अपमानपूर्वक पराजित होने के बाद दशकठ ने अपने गुरु अगद से परामर्श किया। अगद ने अपने प्रिय शिष्य को आदेश दिया कि यज्ञ करो। इससे तुमको ऐसी शक्ति प्राप्त होगी कि तुम अपने आत्मा को अपने शरीर से निकालकर अन्यत्र सुरक्षित स्थान मे रख सकोगे और यदि युद्ध मे तुम्हारा शरीर आहत भी हो जाय तो भी तुम मरोगे नही। दशकठ ने इस आश्वासन पर यज्ञ किया और उसे यथेष्ट शक्ति प्राप्त हो गई। लगभग अमरत्व के समान ऐसी चमत्कृत शक्ति को प्राप्त करते ही दशकठ का दिमाग आसमान को चढ गया। उसके अत्याचार और भी वढ गये और मृत्युलोक

ही नही अपितु स्वर्ग-लोक भी उसके उत्पात से पीड़ित होने लगा।

सबसे पहले उसने अपने ही भाई कुपेटन पर चढाई इसलिए कर दी कि पुष्पक विमान उसके हवाले कर दे। युद्ध करने की सामर्थ्य न देखकर वह बेचारा पुष्पक को वहीं छोड़कर वायु-यात्रा से ईश्वर के पास आया। क्रोध मे आकर ईश्वर ने दशकठ की छाती पर हाथी के दात से आक्रमण किया। आहत होकर दशकठ लका को भागा और विश्वकर्मा को आज्ञा दी कि हाथीदांत को काटकर निकाल दो।

स्वस्थ होने पर दशकठ ने नर मछली का रूप धारण कर लिया और एक मछली से सहवास किया। उनके सयोग से एक मत्स्यपरी उत्पन्न हुई, जिसका नाम था स्वर्णमच्छा। तत्पश्चात् वह हाथी बन गया और एक हथिनी से सयोग किया। उस हथिनी से उसके दो बच्चे हुए। उनके शरीर तो राक्षसों के-से थे, परन्तु चेहरा हाथियों का-सा था। एक का नाम था किरीधर और दूसरे का किरीवन्।

: १० :

सीता-जन्म

यद्यपि दशकठ के महल मे बहुत-सी स्त्रियां थीं, परन्तु महारानी मण्डो उसको सबसे प्रिय थी। वह महारानी को प्रसन्न करने के लिए छोटी-से-छोटी बात पर प्राणतक न्योछावर करने को तत्पर रहता था।

जव राजा दशरथ ने यज्ञ किया था तो अग्नि से हवा में उठी दैवी सुगन्धि लका जा पहुंची। इस दैवी भोजन की सुगध मण्डो को इतनी अच्छी लगी कि वह दशकठ से उसकी प्राप्ति की याचना करने लगी। प्राणप्यारी मण्डो की इस प्रार्थना को वह टाल न सका। उसने एक राक्षसी काकना को आज्ञा दी कि वह कौए का वेष धारण करके उस दैवी भोजन को चुरा लाये। वह उस पुरोडास का केवल थोड़ा-सा भाग ही ला सकी। दशकठ ने उसे मण्डो को समर्पित कर दिया।

फलत' रानी मण्डो गर्भवती हो गई और समय पाकर उसके एक कन्या उत्पन्न हुई। वह साक्षात लक्ष्मी का अवतार थी। उत्पन्न होते ही लडकी चिल्ला उठी, "दशकठ को मारो, दशकठ को मारो, दशकठ को मारो।" लेकिन उसकी यह आवाज उसके मा-बाप को सुनाई नही पडी।

उसके जन्म पर ज्योतिषी बुलाये गए। विभेक भी उनमे से एक था। उसने भविष्यवाणी की कि इस लड़की के द्वारा दशकठ के सारे परिवार का सबीज नाश हो जायगा। यह भयानक भविष्यवाणी सुनकर दशकठ डर गया और उसने विभेक को वह लड़की देकर कहा, इसको ले जाओ और इसके साथ जैसा चाहे व्यवहार करो। विभेक ने उसको एक हाडी मे बन्द किया और एक राक्षस को आदेश दिया कि वह उसे नदी मे बहा दे।

उस लडकी की दैवी शक्ति से नदी के तलपर एक कमल दिखाई दिया। वह हाडी बहती हुई उसपर टिक गई। समुद्र की देवी मणिमेखला ने अन्य देवियो के सहयोग से उस बच्ची

की रक्षा की और लक्ष्मी की दैवी शक्ति से वह हांडी एक ऋषि के स्नान करने के घाट से जा लगी। दैवयोग से यह ऋषि महाराज जनक थे।

जनक मिथिला के राजा थे। राजकीय सुखों से थककर राजा जनक तपस्वी हो गये थे और एक नदी के किनारे रह-कर तपस्या करने लगे। एक दिन जब राजा नदी पर स्नानार्थ गये तो उन्होंने अपने सामने एक हांडी को तैरते देखा। उत्सुकता से राजा जनक ने वह हांडी पकड़ ली और उसे खोला तो उसमे एक बच्ची को देखा। यह महारानी मण्डो की पुत्री ही थी। राजा जनक के पास बच्चे को पिलाने के लिए दूध न था। अतः उन्होंने ईश्वर से प्रार्थना की कि मेरी उगलियों मे दूध पैदा हो जाय, जिसे पीकर लड़की के जीवन की रक्षा हो सके।

जनक न तो अपने राज्य को लौटना चाहते थे और न अपनी तपस्या को भग करना चाहते थे। अतः वह उस लडकी को वन में ले गये और उन्होंने एक वृक्ष के नीचे एक गड्ढा खोदा और ईश्वर से प्रार्थना की कि यदि इस लड़की के भाग्य मे नारायण के अवतार की पत्नी बनना लिखा हो तो इस गड्ढे से एक कमल उत्पन्न हो जाय जिससे यह हाडी उसपर रक्खी जा सके। प्रार्थना के फलस्वरूप तुरन्त एक कमल उत्पन्न हुआ और देवताओं की सहायता से जनक ने इस आशा से कि देवता इस लड़की की रक्षा करेगे, उस हांडी को लडकी समेत कमल के पत्तों में छिपाकर गड्ढे को पाट दिया।

इस हांडी की प्राप्ति के पश्चात् राजा जनक को १६ साल तपस्या करते हो गये, परन्तु उनको आत्मतत्व का

लाभ नही हुआ । इसलिए तपस्या से थककर उन्होने चाहा कि अपने देश को लौट चलू, परन्तु उन्हे उन्स हाडी से मोह हो गया था । अतः वह हांडी छोड़कर जाना नही चाहते थे । अत उन्होने अपने एक सेवक सोम को आदेश दिया कि वह जमीन खोदकर हाडी को निकाल ले । लेकिन यत्न करने पर भी हाडी हाथ न आई । राजा को वडा अचभा हुआ और उसने अपने राज मे आदमी भेजकर सैनिको को वुलाया । वे साथ मे खोदने और खेत जोतने के औजार भी लेते आये । वे भी यत्न करते रहे, परन्तु हांडी हाथ न आई । अन्त मे जनक ने स्वय हल पकडा और हाडी को खोजने के लिए जमीन जोतने लगे । तुरन्त ही लोग देखते क्या हैं कि हाडी प्रकट हो गई । उसपर एक कमल था और कमल मे से एक अतीव सुन्दर कन्या निकली, जिसके लावण्य को देखकर उपस्थित लोग दग रह गये । हल की लकीर से उत्पन्न होने के कारण लडकी का नाम सीता रखा गया । जनक अपनी इस धर्मपुत्री को लेकर अपने राज को लौट आये । अति शीघ्र ही सीता निस्सन्तान महारानी रत्नमणी की आख का तारा बन गई और सब लोग उसको प्यार की दृष्टि से देखने लगे ।

· ११ ·

राम-काकनासुरी-युद्ध

जब राम और उनके भाई बडे हुए तो उनको शिक्षा के लिए गुरु वशिष्ठ और स्वमित्र के पास भेज दिया गया । थोडे

ही दिनो में वे सब विद्याओ मे निपुण हो गये। उनकी विद्या-प्राप्ति से सन्तुष्ट होकर गुरुओ ने एक यज्ञ रचा, जिससे ऐसे शस्त्रों की प्राप्ति हो सके, कि जिनसे राक्षसों का सहार हो जाय।

जब हवन की पवित्र अग्नि प्रज्वलित हुई तो ईश्वर ने उस अग्नि मे बारह बाण छोड़े। इस प्रकार उस यज्ञ मे से प्रत्येक भाई के लिए तीन-तीन धनुष-बाण निकले। उनपर हरएक भाई का नाम अंकित था। इनमे से राम के शस्त्र सबसे उत्कृष्ट थे। उनके नाम थे ब्रह्मास्त्र, अग्निवत् तथा क्लैवत्।

इस प्रकार विद्याओं से अलंकृत और महास्त्रों से सुसज्जित होकर ये चारों भाई घर लौट आये। यह देख मा-बाप को अपार हर्ष हुआ।

कैय्याकेशी के पिता कैय्याकेश के कोई लड़का न था। राजा वृद्ध थे और उनको अपने राज्य को राक्षसो से सुरक्षित रखने मे बड़ी कठिनाई होती थी। उन्होने सुना कि उनका नाती भरत अस्त्र-शस्त्र-विद्या मे बहुत निपुण हो गया है, अतः उन्होने राजा दशरथ को लिखा कि राक्षसों से रक्षा करने के लिए आप भरत को मेरे यहा भेज दे। दशरथ मान गये और भरत अपने भाई शत्रुद के साथ कैय्यकेश देश को प्रस्थान कर गये।

इधर दशकठ को भय हुआ कि ऋषि लोगों की तपस्या इतनी न बढ जाय कि वे शक्तिशाली हो जायं। अतः उसने उन ऋषियों की तपस्या भंग करने के लिए काकनासुरी राक्षसी को भेजा। काकनासुरी अपनी सहेलियो-सहित कौओं

का रूप धारण करके ऋषियो के यज्ञ मे विघ्न डालने लगी। ऋषि लोग इस दुष्कृत्य से तग आकर वसिष्ठ और स्वमित्र के पास दौडे गये। दोनो ऋषि राजा दशरथ के पास गये और उनसे प्रार्थना की कि महाराज आप राम और लक्ष्मण को हमारे साथ कर दे। ये दोनो राजकुमार परमार्थ के लिए सदा ही तत्पर रहते थे। उन्होने तुरन्त ऋषियो के साथ प्रस्थान कर दिया। काकनासुरी राम के बाण से मारी गई और उसके दो पुत्र स्वाहू और मारीश अपनी माता का बदला लेने के हेतु युद्ध के लिए आगे बढे। स्वाहू तो मारा गया, परन्तु मारीश लका को भाग गया।

: १२ :

राम-सीता-परिणय

सीता का रूप अत्यन्त सुन्दर था। अत. यह निश्चय किया गया कि सीता का पाणिग्रहण वही वीर पुरुष कर सकेगा, जो उसको सबसे अधिक वीरोचित उपहार दे सके। जनक के पास एक धनुष था, जो ईश्वर का था। ईश्वर ने इस धनुष से सोलाश देश के राक्षस त्रिपुरम् का वध किया था। युद्ध के पश्चात् ईश्वर ने इस धनुष को तो राजा जनक के पास भेज दिया और अपने शरीर-रक्षक अस्त्रो को ऋषि अगत् के पास भेज दिया, ताकि जब नारायण दशकठ को मारने के लिए अवतार ले तो वे उनके काम आवे। राजा

जनक ने भूमंडल के राजाओं मे घोषित कर दिया कि जो कोई ईश्वर के कोदंड को उठा सकेगा, सीता उसीसे ब्याह दी जायगी। बहुत से राजा आये और अपने बल की परीक्षा की, परन्तु सीता किसीसे ब्याही न जा सकी।

ऋषि वसिष्ठ और स्वमित्र ने सोचा कि राम बड़े पराक्रमी हैं। इनका विवाह सीता से होना चाहिए। अतः काकनासुरी के वध के पश्चात् वे राम और लक्ष्मण को राजा जनक के दरवार में ले गये। वे जव महल की खिड़की के सामने से गुजर रहे थे तो राम और सीता ने एक-दूसरे को देखा और शीघ्र ही एक-दूसरे पर मुग्ध हो गये, परन्तु सीता को प्राप्त करना तो तभी सभव था जब राम परीक्षा मे उत्तीर्ण हो सके।

जव दोनों राजकुमारों को धनुष के पास लाया गया तो लक्ष्मण ने पहले परीक्षा की। देखा कि धनुष उठाना कुछ कठिन नही है। पर लक्ष्मण ताड गये थे कि राम के हृदय मे सीता के लिए प्रेम उत्पन्न हो गया है। अतः उन्होंने धनुष को उठाने का यत्न नहीं किया। जब राम की बारी आई तो उन्होंने धनुष को इस प्रकार उठा लिया मानो वह किसी पक्षी का पर है और इस प्रकार सीता के साथ राम के विवाह का निश्चय हो गया।

दशरथ को अयोध्या से बुलाया गया और वड़ी धूमधाम से विवाह-विधि सपन्न हुई। विवाह के उपरान्त राजा दशरथ खुशी-खुशी अपने पुत्र और पुत्र-वधू के साथ अयोध्या को लौट आये।

: १३ :

राम-रामासुर युद्ध

जब बारात जगल मे होकर गुजर रही थी तो एक अन्य देवता रामासुर ने उसे रोका। रामासुर का शस्त्र था परशु। वह बरात रोककर खड़ा हो गया और कहने लगा, बताओ इसका नेता कौन है। जब उसको राजा दशरथ का नाम बताया गया और राम के पराक्रम का वर्णन किया गया कि किस प्रकार ईश्वर के धनुष को उठाकर राम ने सीता के साथ विवाह किया तो रामासुर ने राम के बल की परीक्षा लेनी चाही। बड़ा युद्ध हुआ। अन्त मे रामासुर ने अपनी पराजय स्वीकार कर ली। इसके पश्चात् राम नारायण के रूप मे प्रकट हुए और रामासुर ने उनको प्रसन्न करने के लिए त्रिमेघ नामक अस्त्र दिया। यह त्रिमेघ रामासुर के पितामह को ईश्वर से प्राप्त हुआ था। राम ने त्रिमेघ को आकाश मे फेक दिया कि वह बिरुण के सरक्षण मे रहे और जब कभी राम को उसकी आवश्यकता हो वह उसको ले सके। इसके बाद बरात अयोध्या को चल पड़ी और निर्विघ्न राजधानी मे पहुंच गई।

राम-वनवास

राजा दशरथ वृद्ध हो चले थे। उनमें राज्यशासन की शक्ति न रही। अतः उन्होंने राम को उत्तराधिकारी बनाने का निश्चय किया। उन्होंने अपनी यह इच्छा सब दरबारियों पर प्रकट की। यह सूचना रानी कैय्यकेशी की बांदी कुच्ची के कान मे भी पड़ी। कुच्ची को राम से बैर था। इसका कारण यह था कि कुच्ची की पीठ मे एक कुब्ब था। राम ने एक तीर मारा जिससे कुच्ची का कुब्ब बाहर को निकल आया राम ने फिर एक तीर और मारा। इस पर बड़ी हँसी हुई। तब से कुच्ची राम से बैर रखने लगी।

कुच्ची को यह एक सुअवसर मिल गया। कैंय्यकेशी को राजा दशरथ ने एक वर देने का वचन दिया था। बात यों है कि जब राजा दशरथ गद्दी पर बैठे तो एक दैत्य पदुत-दन्त ने स्वर्ग पर चढाई की। इन्द्र ने दशरथ की सहायता मांगी। दशरथ तुरन्त स्वर्ग को चल पड़े। तीनों रानियों में से केवल कैय्यकेशी ही उनके साथ गई थी। दैत्य ने एक बाण से दशरथ के रथ के पहिये का धुरा तोड़ दिया, जिसके कारण दशरथ की विजय मे बाधा पड़ गई। पति को विपत्ति में देखकर कैय्यकेशी ने अपना हाथ पहिये मे डाल दिया और ईश्वर से प्रार्थना की कि वह रक्षा करे। रानी की सहायता से दशरथ विजयी हुए। इसपर प्रसन्न होकर राजा ने रानी

को वचन दिया कि तुम जो वर मागोगी वही दिया जायगा।

कुब्बी जानती थी कि राजा दशरथ वचनबद्ध हैं अतः उसने कैय्यकेशी को इस बात के लिए राजी किया कि राजा से यह वर मागे कि राम को वनवास हो और भरत गद्दी पर बिठाया जाय। कैय्यकेशी राजी हो गई। और आखो मे आसू भरकर याचना करने लगी कि राम को चौदह साल का वनवास दीजिये और मेरे पुत्र भरत को गद्दी पर बिठाइए। राजा ने रानी को बहुत समझाया कि ऐसा अनुचित वर मत मागो। परन्तु रानी हठ कर गई। राजा बचनबद्ध थे अत वह वचन को न तोड सके। उन्होंने दुखी हृदय से राम को चौदह साल का वनवास दे दिया। राम तो पितृभक्त थे। वह नही चाहते थे कि उनके पिता अपने वचन से फिर जाय अत वह हर्ष-पूर्वक राजा के आदेश को स्वीकार करके अपनी पतिप्रिया सीता और अपने भाई लक्ष्मण के साथ वन को चल दिये। राम तो सदैव मनुष्य की भलाई मे तत्पर रहा करते थे। उन्होंने इस वनवास के अवसर को भूमि को राक्षसो से मुक्त करने के उद्योग मे लगाने का निश्चय किया।

राम के वियोग से राजा दशरथ को इतना दुख हुआ कि उनका हृदय टूट गया और वह मृत्यु को प्राप्त हो गये।

राम-पादुका

राम अपने भ्रातृभक्त लक्ष्मण और प्यारी पत्नी सीता के साथ वन को रवाना हुए। चलते-चलते वे सतोंग नदी के तट पर पहुचे, जहां अहेरियों का राजा खुखन रहता था। वह राम का भक्त था। अतः उसने राम से प्रार्थना की कि आप यहां रहे और मेरे बजाय इन जगलियों पर राज करें। यह स्थान अयोध्या के निकट था। अत: राम ने धन्यवादपूर्वक इस भेट को अस्वीकार कर दिया। खुखन के साथ उन्होंने नदी पार की और ऋषि भरद्वाज के आश्रम में पहुंचे। वहा भी ऋषि ने उनका बड़ा आतिथ्य-सत्कार किया। ऋषि ने परामर्श दिया कि आप ऋषि सरभग के आश्रम में जाइये। फलस्वरूप राम वहा से चलकर यथासमय सरभग के आश्रम में पहुंचे। ऋषि ने उनको वहा ठहरने के लिए कहा परन्तु यह स्थान भी अयोध्या के निकट था और भय था कि भरत यहां भी उनका पीछा करेगे। अतः वह वहां बसने के लिए राजी न हुए। तब ऋषि ने कहा कि आप शतकूट पर्वत पर जाइये। वहां देवों ने आपके लिए घर बना रखा है। यह खुशखबर सुनकर राम हर्षपूर्वक वहां से शतकूट पर्वत की ओर चल पड़े और एक लम्बी यात्रा के बाद वहां जा पहुंचे। और वहां एक सुरम्य स्थान देखकर रहने लगे।

इधर भरत और शत्रुद ने सुना कि राम को गद्दी मिल रही है। इससे उनको अपार हर्ष हुआ और राम के अभिषेक मे सम्मिलित होने के लिए वे दोनो भाई अयोध्या को चल पड़े। परतु जब वह अयोध्यापुरी के निकट पहुचे तो वहा हर्ष और उत्सव के बजाय रोना-पीटना मचा था। तुरन्त ही वे जान गये कि बात क्या है। भरत तो राम के बडे भक्त थे। वह भला राम का राज कैसे लेते ? अतः उन्होने निश्चय किया कि पिता की अत्येष्टि मे भरत और उसकी माता कुछ भी भाग न लेवे । अतः अत्येष्टि का समस्त काम वसिष्ठ और स्वमित्र ने किया। जब यह काम समाप्त हो गया तो भरत और शत्रुद अपनी माताओ को साथ लेकर वहा जा पहुँचे जहां राम रह रहे थे। कई दिनो की पैदल यात्रा करने के उपरात भरत ने शतकूट पहुचकर राम से आग्रह किया कि महाराज आप देश को लौट चले और अयोध्या मे राज करें ।

पर जहा भरत भ्रातृ-भक्त थे वहा राम पूरे पितृ-भक्त थे। उन्होने किसी भी प्रकार वापस अयोध्या लौटना स्वीकार नही किया और न कैय्यकेशी से, जो उनकी विपत्ति का मूल थी, किसी प्रकार का द्वेष-भाव ही प्रकट किया। परतु भक्ति मे भरत भी किसी से पीछे न थे। वे भी राज करने पर राजी नही हुए। अत मे इस समस्या का यह समाधान किया गया कि राम अपनी पादुका भरत को दे। यह पादुका राम-के स्थान मे गद्दी पर स्थापित की जाय और राम के प्रतिनिधि-स्वरूप भरत अयोध्या का शासन भार सभाले। राम ने यह बात मान ली। भरत ने अत मे प्रार्थना की

"महाराज ! अब हम जाते तो हैं, परन्तु यदि १४ वर्ष

के बाद आप अयोध्या न लौटे तो हम अग्नि में जलकर मर जायंगे।"

इस प्रकार राम के वियोग से दुःखी होकर भरत अयोध्या लौट आये।

गोदावरी के तट पर राम

जब भरत और उनके साथी अयोध्या को लौट आये तो उन्होंने शतकूट से भी चलने का निश्चय कर लिया कि कही ऐसा न हो कि यहाँ फिर उनको अपनी दुखी माता से मिलना पड़े। अतः वह घने वन मे घुस पड़े। वहां उनको एक राजा मिला जिसका नाम सुदर्शन था। यह अपनी रानी सुखई के साथ तपस्या का जीवन व्यतीत करता था। उसने राम से अपने साथ रहने को कहा। पर राम ने वहां रहना स्वीकार नही किया। अब वे बीरव नामक राक्षस के एक उपवन मे आये। इस राक्षस को ईश्वर के वरदान से समुद्रदेव और अग्निदेव का बल प्राप्त था। इस कारण वह बड़ा बलशाली था। जब राम उपवन से गुजर रहे थे तो राक्षस के आदमियों ने उन्हें रोका। परन्तु लक्ष्मण ने उन सबको मार डाला। तब बीरव घर पर न था। जब वह लौटा और उसे ज्ञात हुआ कि उसके नौकरों के साथ ऐसा व्यवहार हुआ है तो उसने

वदला लेने की ठान ली। परन्तु वली होने पर भी वह राम और लक्ष्मण के सयुक्त सामर्थ्य का सामना न कर सका और अन्त मे मारा गया।

इसके वाद राम लक्ष्मण और सीता ने और घने वन मे प्रवेश किया। रास्ते मे उन्हे एक अप्सरा मिली। उसका नाम सोवरी था। ईश्वर की आराधना मे उससे कोई त्रुटि हो गई थी जिसके कारण उसे शाप मिला था कि वह जलते हुए जगल के वीच रहे। उसके शाप से छूटने की एक ही शर्त थी कि जव राम वन मे आवेगे और दावानल को वुझायेगे तो उसकी मुक्ति होगी। सोवरी ने राम से प्रार्थना की कि वह वन की आग को वुझाने की कृपा करे और उसका इस सकट से उद्धार करे। परोपकारी राम ने दुखिया की टेर सुनी और आग को वुझाकर उस अप्सरा को फिर उसका दिव्य स्वरूप प्राप्त करा दिया।

चलते-चलते राम ऋषि अगत् के आश्रम मे पहुचे। ईश्वर ने अपना वह अस्त्र जिससे उन्होने त्रिपुर को मारा था, इन्हीं अगत् के सरक्षण में रख दिया था, कि जव राम आये तो वह उनको दे दिया जाय।

ऋषि से अस्त्र को लेकर राम अपने भाई और पत्नी के साथ गोदावरी के तट पर आये। वहा इन्द्र ने पहले से ही उनके रहने के लिए तीन पर्णकुटिया वना रक्खी थी।

: १७ :

सम्मनखा

राम, लक्ष्मण और सीता ने गोदावरी के तट पर वास करना आरभ ही किया था कि सम्मनखा और जिह्वा का पुत्र राक्षस कुम्भकश से उनका सामना हो गया।

कुम्भकश का उद्देश्य था कि तपस्या करके विपुल शक्ति अर्जित करे। उसकी तपस्या से ब्रह्मा प्रसन्न हुए और उसके सामने एक तलवार फेक दी। राक्षस को इससे बड़ा क्रोध आया। उसने माना कि ब्रह्मा ने उसका अनादर किया है। ब्रह्मा को चाहिए था कि साक्षात सामने आकर तलवार को भेट करता। इसकी बजाय उसने तलवार को उसके सामने फेककर उसका अपमान किया। अतः उसने उस तलवार को स्वीकार नही किया।

उसी समय लक्ष्मण जंगल मे फल-फूल लेने गये हुए थे। वहाँ जगल मे उस तलवार को पड़ा देखकर उठा लिया और योही उसे हिलाने अगे। पास ही कुम्भकश समाधि मे बैठा था। उसकी आख खुली तो उसने लक्ष्मण को तसवार घुमाते देखा। कुम्भकश को क्रोध आ गया और दोनों मे युद्ध छिड़ गया। उस युद्ध मे लक्ष्मण के हाथों राक्षस मारा गया। जब पुत्र पर यह आपत्ति आई तो उसके पिता जिह्वा भी उसी प्रकार के दुर्भाग्य से बचा न रह सका।

उस समय दशकंठ वन-यात्रा की तैयारी कर रहा था।

इसने लका को जिह्वा के अधीन छोडकर अपनी यात्रा प्रारभ की। जिह्वा ने अपने कर्त्तव्य का साहस और बुद्धिमत्ता से पालन किया। एक सप्ताह तक उसकी आख तक न झपकी। अन्त में प्रकृति ने विजय पाई और उसे नीद आ गई। परन्तु सोने से पहले उसने अपना शरीर इतना फैला लिया था कि उसकी जीभ ने लका को चारो ओर से घेर लिया, जिससे उसके सोते हुए लका पर कोई आक्रमण न कर सके।

दशकठ जब वन-यात्रा से लौटा तो उस समय आधी रात थी। सारी लका-नगरी सो रही थी। चारो ओर अधकार था। जब नगरी में घुसने का उसे कोई मार्ग न मिला तो उसने समझा कि लकापुरी को किसी शत्रु ने घेर लिया है। इसलिए उसने मार्ग बनाने के लिए अपना चक्र फेका। वह चक्र जिह्वा की जीभ पर लगा और जिह्वा तुरत मर गया। लका मे प्रवेश करने पर रावण को ज्ञात हुआ कि लका के दिखाई न देने का क्या कारण था। दशकठ को अपने बहनोई जिह्वा के मरने का बडा दुख हुआ। उसने जिह्वा की मृत्यु को वीर-मृत्यु का रूप देने का आदेश किया।

अपने पति के मर जाने पर सम्मनखा अकेली रह गई। उसका जीवन सदैव रग-रेलियो मे बीतता था। अब वैधव्य का क्लेश उसको सतप्त करने लगा। उसने अपने भाई दशकठ से विदा मागी कि वह जाकर अपने बेटे कुम्भकश को देख आये। असल में उसकी इच्छा थी कि वह किसी दूसरे पति की तलाश करे।

एक सुन्दर स्त्री का रूप धारण करके वह गोदावरी के तीर पर पहुची जहां राम निवास करते थे। देखते ही वह

अयोध्या के राजकुमार पर मोहित हो गई। परन्तु राम ने उसके हावभाव पर कुछ ध्यान नही दिया। जब सम्मनखा की आंख सीता पर पड़ी तो वह समझ गई कि इसीके कारण राम मेरी ओर ध्यान नही देते हैं। अत: उसने सोचा कि अगर सीता को समाप्त कर दिया जाय तो राम को उसकी ओर झुकना ही पड़ेगा। अतः वह राक्षसी का रूप धारण करके सीता को डराने और उनसे लड़ने-झगड़ने लगी। यह देख राम ने उसे मार भगाया और लक्ष्मण ने उसके हाथ-पैर और नाक-कान काट लिये।

सम्मनखा रोमगन नामक नगर मे आई। वहा उसने अपने भाई खर से झूठ-मूठ ही कह दिया कि राम और लक्ष्मण उसे छेड़ते हैं और उसने उनके प्रेम को स्वीकार नही किया, इसीलिए उन्होने बदला लेकर मेरा अंग-भंग कर दिया। जब खर ने यह सुना उसे बड़ा क्रोध आया और अपनी बहन का बदला लेने के लिए वह निकल पड़ा।

खर और राम मे लड़ाई होने लगी। खर ने एक ही प्रहार मे राम के बाण के दो टुकड़े कर दिये। तब राम ने रामासुर का बाण लिया जो बिरुन के सरक्षण मे था। खर उस प्रबल शस्त्र का सामना न कर सका और मारा गया।

उसकी मृत्यु पर उसके छोटे भाई दूषण ने युद्ध शुरू किया पर उसकी भी वही गति हुई।

यह खबर त्रिशिर के पास पहुची। यह तीन सिर वाला राक्षस था। राक्षस का एक मुख तो क्रोध से इतना खुल गया कि वह देवताओं के लोक तक जा पहुंचा। दूसरे मुँह से प्रकट होता था कि राम के शरीर के ऐसे बारीक टुकड़े कर डाले

जायेंगे कि वे कौओं की चोच मे भी न आ सके। तीसरे मुँह से उसने एक विशाल सेना को इकट्ठा होने की आज्ञा दी। इस सेना की विचित्रता यह थी इसके सैनिको के मुख किसी भयानक पशु के समान थे और शरीर किसी अन्य पशु के समान था। परन्तु इन तीनो विचित्र शिरो और अद्भुत सेना के होते हुए भी त्रिशिर की वही दशा हुई जो उसके साथी खर और दूषण की हुई थी।

: १८ :

सीता-हरण

राक्षसो के इन तीन सेनापतियो की दुर्गति को देखकर सम्मनखा बडी भयभीत हुई और जल्दी-से-जल्दी लका जा पहुंची। झूठ बोलने मे वह दक्ष थी। उसने दसकठ से कहा कि उसने जगल मे एक अतीव सुन्दर रमणी—सीता देखी है। उसने चाहा कि उस रमणी को पकडकर दशकठ के लिए ले आये। जब वह सीता को ला रही थी तो लक्ष्मण ने उसका अग-भग कर दिया और राम ने खर-दूषण तथा त्रिशिर को मार डाला। उसने दशकठ को प्रेरित किया कि वह राम से युद्ध करके सीता को हर ले आये।

जब दशकठ ने सीता के रूप का हाल सुना तो वह उस-पर इतना मोहित हो गया कि उसे अपनी बहन सम्मनखा के

अनादर का भी स्मरण नहीं रहा। वह यही सोचता रहा कि किसी प्रकार सीता का हरण किया जाय। उसने रानी मण्डो से भी परामर्श किया और कहा कि बहन का बदला लेने के लिए सीता को ले आना चाहिए। राम और लक्ष्मण को मारने से क्या प्रयोजन ? ये तो राक्षसों के सामने मक्खी के समान हैं। मण्डो ने बहुत समझाया परन्तु, दशकठ ने उसकी वात न मानी। वह तो सीता के लिए विह्वल हो रहा था। उसने मारीश को आदेश दिया कि हिरण का रूप बनाकर जाओ और राम और लक्ष्मण को सीता से अलग कर दो। मारीश ने अक्षरशः उसकी आज्ञा का पालन किया।

वह हिरण का रूप रखकर सीता की कुटी के सामने घास चरने लगा। सीता ने ऐसा सुनहरा और चुलबुला हिरण देखकर इच्छा प्रकट की कि इसको तो पाल लेना चाहिए। उसने राम से कहा कि इसको पकड लाइए। राम ने वहुत समझाया, परन्तु सीता ने हठ पकड़ ली। अन्त मे राम हिरण को पकड़ने चल दिये। उसका पीछा करते-करते वह घने जंगल मे जा घुसे। राम के पीछा करने पर मारीश इतना थक गया कि हिरण के वेश को अधिक देर धारण न कर सका और अपने निज राक्षस रूप में प्रकट हो गया। राम ने पहचान लिया और एक ऐसा तीर छोडा कि उसके लिए वह घातक हो गया। अपने प्राणों को न वचता देखकर और फिर भी दशकंठ की सहायता के विचार से चिल्ला उठा, "लक्ष्मण वचाओ, लक्ष्मण वचाओ।"

यह आवाज सीता के कानों मे पड़ी। वह समझी कि राम पर कोई विपत्ति आ गई। उसने लक्ष्मण से आग्रह

किया, वह शीघ्र ही अपने भाई की सहायता के लिए दौड़ जाय। परन्तु लक्ष्मण तो समझ गये कि ये राम के शब्द नही, बल्कि किसी राक्षस के हैं। उसके समझाने पर भी सीता आग्रह करती रही और लक्ष्मण को ताने मारती रही। अन्त मे लक्ष्मण देवो से सीता की रक्षा की प्रार्थना करते हुए राम की तलाश मे चल दिये।

अब दशकठ को राम और लक्ष्मण की अनुपस्थिति से लाभ उठाने का अवसर मिल गया। वह एक साधु का रूप बनाकर सीता के समीप आया। एक साधु को देखकर सीता आतिथ्य करने के लिए उसे अपनी कुटी मे ले गई। परन्तु साधु बोला, "अरी सीता, तुम जैसी सुन्दर स्त्री तो सब लोको के राजा दशकठ की रानी होने के योग्य है।" सीता ने साधु के के मुख से ऐसे अपशब्द सुने तो उसे क्रोध आया और उसको अपनी कुटी से बाहर निकाल दिया। रावण इस अपमान को न सह सका और अपने निज राक्षसीरूप में प्रकट होगया। उसने जबरदस्ती सीता को पकड़ कर अपने रथ पर बिठा लिया और लका की ओर चल पड़ा।

उसी समय एक बलिष्ठ पक्षी शतायु, जो राम का मित्र था, राम के दर्शनार्थ उधर आ रहा था। उसने देखा कि दशकठ उसके मित्र राम की भार्या सीता को आकाश मार्ग से लिये जा रहा है। उसने दशकठ से कहा कि सीता को अभी छोड़ दो। उसके इन्कार करने पर शतायु ने लड़ाई करके दशकठ की सेना को मार डाला और लकेश से भी युद्ध छेड़ दिया। दशकठ बडे प्रबल अस्त्र छोड़ता था परन्तु पक्षी पर उनका कोई प्रभाव नही होता था। पक्षी हँस रहा था और

कह रहा था कि मेरे ऊपर सिवाय उस अगूठी के जो सीता के हाथ में है और किसी का प्रभाव नही होगा । शतायु के कथन का बुरा परिणाम हुआ । दशकंठ ने सीता के हाथ से अंगूठी छीन ली और पक्षी पर दे मारी जिससे वह गिर गया। परन्तु वह अपनी चोंच से अगूठी पकड़े रहा और उसकी आत्मा राम की प्रतीक्षा मे शरीर से चिपटी रही। इस प्रकार शत्रु से छुटकारा पाकर दशकंठ सीता को लंका मे ले आया और उसको अपने एक सहस्र पुत्रों के सरक्षण मे रख दिया।

: १९ :

सीता की खोज

मारीश को मारकर राम लौट रहे थे कि मार्ग में लक्ष्मण मिले इससे उनको बड़ा भय मालूम हुआ । वह जान गये कि किसी चालाकी से लक्ष्मण को अलग किया गया है और सीता अकेली छूट गई होगी । दोनों भाई जल्दी से कुटिया की ओर दौड़े और देखा कि उनकी आशंका ठीक निकली । कुटिया सूनी पड़ी थी । आनन्द वर्धिनी सीता का वहां नाम निशान तक न था।

राम-लक्ष्मण दोनों बड़े दुःखी हुए । उनकी समझ में नही आया कि क्या करें । परन्तु भाग्यवश तभी इन्द्र वहां आ गये और उन्होंने बताया कि सीता को इस मार्ग से ले जाया गया

है। राम और लक्ष्मण दोनों उसी राते चल्ल पडे और वहां आ पहुँचे, जहा घायल हुआ शतायु राम की प्रतीक्षा कर रहा था। पक्षी ने राम को सीता की अगूठी दी और यह बताकर कि दशकठ उसे हर ले गया है, अपने प्राण त्याग दिये। कृतज्ञ राम ने एक बाण छोडा जो अर्थी बन गया, और दूसरा बाण छोडा जिसने आग प्रज्वलित करके पक्षी के शरीर को जला दिया। फिर तीसरा बाण छोडकर जलती हुई अग्नि को शान्त कर दिया।

इस प्रकार शतायु की अन्त्येष्टि करके राम-लक्ष्मण शतायु द्वारा बताये मार्ग की खोज करते हुए आगे चलने लगे। जब वह जा रहे थे कि मार्ग मे एक और राक्षस मिला जिसका नाम कुम्बल था। उसको ईश्वर ने शाप दिया था कि जिसके कारण उसका केवल ऊपरी शरीर ही बना था। उसके लिए भी यही शर्त थी कि जब राम बन मे आयेगे तो उसको इस दु:ख से छुडायेगे। जब राम और लक्ष्मण उसके निकट आये तो उसने दोनो हाथो से उनको पकड लिया और चबा डालना चाहा। परन्तु उसका समस्त शरीर एक विचित्र भय से कपायमान हो गया। उसने समझ लिया कि जिस मनुष्य को मैंने पकडा है, वह साधारण पुरुष नही, बल्कि मेरे मोक्षदाता राम ही हैं। उसने झट उनको छोड दिया। जब उसने राम की विपत्ति का हाल सुना तो उसने उनको परामर्श दिया कि खीद्खिन् देश मे जाकर वहां के राजा बाली से सहायता लें, खीद्खिन् और जम्बू की सेनाओ को लेकर लका पर चढाई करें और सीता को छुडा लाये। कुम्बल से परामर्श लाभ करके राम ने राक्षस को पीडा से मुक्ति दिलाने के हेतु एक

तीर छोड़ा और वह मर गया ।

जाते-जाते मार्ग मे उनको एक और राक्षसी मिली, जिसका नाम था अशमुखी । वह भी देखते-ही-देखते इन दोनों भाइयों पर मोहित हो गई । उसने अपनी दैवी माया से चारों ओर अन्धकार कर दिया और लक्ष्मण को गोद में उठाकर आकाश में उड गई कि राम अपने भाई की सहायता के लिए दौड़ न सके । परन्तु राम के बाणों ने अधकार के बादल छिन्न-भिन्न कर दिये और लक्ष्मण को अपनी दशा का ज्ञान हो गया । उन्होंने कुछ मन्त्र पढे, जिनके प्रभाव से वह लक्ष्मण सहित भूमि पर आ गिरी । लक्ष्मण ने उसकी भुजाए काट डाली । इसपर वह जान बचाकर जगल को भाग गई ।

इस विपत्ति के पश्चात् उनको एक छायादार वृक्ष दिखाई दिया । वे विश्राम के लिए वहां बैठ गये । दैवयोग से उस वृक्ष पर हनुमान बैठे हुए थे । दो अजनबी आदमियों को वृक्ष के तले देखकर उनका जी चाहा कि मालूम करे कि ये कौन हैं ? अतः उनका ध्यान आकर्षित करने के लिए हनुमान ने एक शाखा को हिलाया । उस समय राम थककर जरा देर के लिए सो गये थे और लक्ष्मण उनका पहरा दे रहे थे । राम जग न उठें इसलिए लक्ष्मण ने बन्दर को भगाना चाहा, परन्तु बन्दर वहां से न टला । वह आग्रहपूर्वक शाखा को हिलाता ही रहा । अब तो लक्ष्मण ने धनुष-बाण उठा लिया, परन्तु हनुमान ने लक्ष्मण के हाथों से धनुष-बाण छीन लिया और लक्ष्मण को निश्शस्त्र कर दिया । इस विचित्र बन्दर की धृष्टता को देखकर उन्हें राम को जगाना ही पड़ा और उनसे सब हाल बताया । राम ने ऊपर को देखा तो बन्दर के शरीर पर

पूर्व निश्चित चिह्न दिखाई पडे।

जब हनुमान ने देखा कि उसके विशिष्ट चिह्न उन्होंने पहचान लिये, तो वह समझ गया कि यह अवश्य ही नारायण के अवतार राम हैं। हनुमान वृक्ष से उतर आये और अपनी सेवायें राम को समर्पित कर दी।

: २० :

राम और सुग्रीव की भेंट

जब हनुमान ने राम की विपत्ति का हाल सुना तो उन्होंने उचित समझा कि इन्हें अपने मित्र सुग्रीव से भी भेंट कराई जाय जो अपने भाई वाली-द्वारा अपमानित करके निकाल दिया गया था। दोनों भाई कैसे लड पड़े वह कथा इस प्रकार है .

कैलास पर्वत का एक द्वार एक राक्षस की देखभाल मे था। जिसका नाम था नन्दकाल। एक दिन ईश्वर की अप्सराओं मे से एक उद्यान मे कुछ फूल चुनने गई। राक्षस ने देखा कि एक चुलबुली स्त्री फूलों से लदी हुई उद्यान में घूम रही है। उसके मन मे क्षोभ उत्पन्न हुआ और उससे प्रेम करने लगा। थोड़ी देर तक तो उसने अपनी इस मदन-वेदना को छिपाये रखा। परन्तु अपने भाव के वशीभूत होकर अन्त मे उसने उस स्त्री की ओर एक फूल फेंका कि जिससे उसका

ध्यान आकर्षित ही कर सके। दुर्भाग्यवश वह स्त्री प्रेम-भावना के वश मे न थी। अत, इस प्रेम-प्रदर्शन से वह क्रुद्ध हो गई। वह कुपिता होकर ईश्वर के पास गई और उस राक्षस की शिकायत कर दी। ईश्वर को इस राक्षस की उद्दंडता पर क्रोध आया और उसको शाप दिया कि तू दरब नाम का भैंसा बन जा। तेरी यह योनि उस समय छूटेगी जब तेरा ही पुत्र दरबी तुझे मारेगा।

फलस्वरूप नन्दकाल को कैलाश छोड़ना पड़ा और वह भैंसा बन गया। थोड़े ही दिनों में वह बहुत से भैंसों का सरदार हो गया और बड़ा शक्तिशाली हो गया। अब वह अपने इस जीवन को इतना प्यार करने लगा कि इसे छोड़कर कैलाश जाने की भी उसे इच्छा नही रही। इसलिए जब कभी उसके नर बच्चा पैदा होता तो वह उसे मार डालता। जिससे उसको मारने वाला बेटा शेष न रहे। इससे उसके झुंड में जो भैंसे थी उनको बहुत दुख होता था। इसलिए जब एक भैंस के बच्चा होनेवाला था तो वहां से हटकर एक खोह में चली गई कि कही वह नर बच्चा हुआ तो उसीका बाप उसे मार न डाले। बच्चा पैदा हुआ और उसका नाम दरबी पडा। उसकी मां ने उसको बता दिया कि उसके बाप की क्या गति हो चुकी है और उसने उसको देवों की रक्षा में छोड़ दिया।

जब वह बड़ा हुआ तो बाप से बदला लेने की बात सोचने लगा। यह देखने के लिए कि वह बाप के बराबर हुआ या नही, वह अपने खुरों के चिह्नों को अपने बाप के खुरो के चिह्नो से नापा करता था। जब दोनों के चिह्न बराबर

दिखाई पडे तो उसने समझा कि अब वह अपने बाप के बराबर हो गया। इसलिए अब वह खुल गया और अपने बाप से युद्ध करना चाहा। इस प्रकार ईश्वर के निश्चय के अनुसार दरब अपने पुत्र दरबी के हाथ से मारा गया।

पहली ही लडाई मे विजयी होने से दरबी के घमंड का पार न रहा। वह इतना उद्दड हुआ कि एक बार उसने हिमालय के जगल के देवताओ के साथ ही लडना चाहा। इसपर उन्होने दरबी को परामर्श दिया कि वह पहले पच गिरि के देवो से लडे। जब वह वहां गया तो उन्होने उससे कहा कि वह समुद्र के अधिष्ठाता देव से लड़े। परन्तु समुद्रदेव लडने के लिए तैयार न हुए। उन्होने उसे ईश्वर के पास भेज दिया और कहा कि ईश्वर ही तुम्हारी युद्ध की पिपासा को तृप्त करेगे। ईश्वर ने कहा कि तुम बाली के पास जाओ। उसके हाथ से मारे जाकर तुम खर के पुत्र बनोगे। तुम्हारा नाम मङ्करकठ होगा और अन्त मे तुम राम के तीर से मारे जाओगे।

अतः दरबी बाली के पास गया और उसे युद्ध के लिए ललकारा। खुले मैदान मे लडाई हुई और दोनो बराबर रहे। बाली ने कहा कि कल प्रातःकाल खोह के बीच मे लड़ेंगे। दरबी राजी हो गया। दूसरे दिन नियत खोह मे लड़ाई हुई। परन्तु खोह के लिए प्रस्थान करने से पूर्व बाली ने सुग्रीव से कहा कि तुम खोह के द्वार पर खडे रहना और बहते हुए रुधिर को देखते रहना। यदि रुधिर का रंग काला हो तो दरबी का रुधिर होगा। यदि रुधिर का रंग हलका हो तो समझना कि बाली मारा गया। उस समय तुम खोह का द्वार

बन्द कर देना, जिससे संसार में कोई यह न जान पाये कि बाली इस दुर्गति से मरा।

सात दिन तक युद्ध होता रहा, परन्तु किसीकी विजय नही हुई। अन्त मे बाली ने चाल चली। उसने दरबी से पूछा, "क्योजी, तुममे इतनी शक्ति कैसे आ गई?" शक्ति के नशे मे वह देवताओं की सहायता की कृतज्ञता को भूल गया और बोल उठा कि मेरी शक्ति मेरे सीगों मे है। बाली ने देवो से कहा कि यह कृतघ्न है, इसका साथ छोड़ दो। देवों की सहायता से वंचित होते ही दरबी को बाली ने एक घूसा मारा और वह मर गया।

उस समय वर्षा हो रही थी और उसका काला रग फीका पड़ गया। सुग्रीव ने समझा कि यह मेरे भाई का ही रुधिर है। अतः उसने आदेशानुसार खोह का द्वार बन्द कर दिया और वहां से चला गया।

बाली ने दरवी का सिर काट लिया और खोह के द्वार पर आया। द्वार को वन्द पाकर उसे क्रोध आया। उसने समझा कि सुग्रीव मुझे मारकर मेरी गद्दी लेना चाहता है। उसने क्रोध मे दरवी का सिर द्वार के पत्थर पर दे मारा जिससे खोह का द्वार खुल गया। महल मे आकर उसने सुग्रीव को उसके अपराध मे घर से निकाल दिया, जो वस्तुतः उसने नही किया था। घर से निकलकर सुग्रीव जंगल मे भटक रहा था। वहां हनुमान से उसकी भेट हो गई और दोनों साथ-साथ रहने लगे। दरवी ने दशकंठ के छोटे भाई खर और रजतासुर के घर मे पुत्र के रूप में जन्म लिया।

सुग्रीव ने अपनी दुख-गाथा राम को सुनाई। राम को

यह सुनकर बडा दुख हुआ। दोनो मे यह निश्चय हुआ कि सुग्रीव राम की सहायता से वाली से लड़े और राम की सुग्रीव की सहायता से दशकठ को पराजित करके सीता को वापस लावे।

: २१ :

वाली का पतन

वाली के विरुद्ध सुग्रीव की सहायता करने मे राम को एक सकोच था। उनकी वाली से कोई लडाई तो थी नही। सुग्रीव राम के इस सकोच को ताड गया। इसे दूर करने के लिए सुग्रीव ने कहा कि एक तो वाली ने प्रतिज्ञा-भग करके मेरी पत्नी तारा का धर्म नष्ट किया है। दूसरे वाली को ईश्वर का यह अभिशाप है कि नारायण के अवतार के हाथो उसका वध होगा।

राम की शका इस प्रकार दूर हो गई और वह सुग्रीव की सहायता को राजी हो गये। वाली को ईश्वर ने एक वर दिया था कि जिस किसीसे तुम लडोगे उसका आधा वल तुममे आ जायगा। अत. सुग्रीव को हानि से बचाने के लिए राम ने तीरो को जल मे भिगोया और उस जल को सुग्रीव के सिर पर छिडक दिया।

अब वे खीद्खिन् मे गये और सुग्रीव ने वाली को युद्ध

के लिए बुलाया। राम ने सुग्रीव को बचन दिया था कि जब वह बाली से लड़ता होगा तब वह तीर मारेंगे।

बाली और सुग्रीव मे कुश्ती होने लगी। दोनो भाई इतने तेज थे कि राम को यह पहचानना कठिन हो गया कि किस पर बाण छोड़ा जाय। बाली ने शीघ्र ही सुग्रीव को पछाड़ दिया और चक्रवाल पहाड़ पर दे मारा। परन्तु पवित्र जल ने सुग्रीव की रक्षा की।

जब सुग्रीव लौटा तो उसने शिकायत की कि राम ने बाण क्यों नही छोड़ा ? राम ने बताया कि वे बाली को पहचान न सके। अतः उन्होंने कपडे की एक धज्जी ली और पहचान के लिए सुग्रीव के हाथ मे बाध दी।

दूसरे दिन जब कुश्ती आरम्भ हुई तो राम ने बाली पर बाण छोड दिया। बाली इतना चालाक था कि उसने तीर पकड़ लिया। उसने देखा कि एक तपस्वी बाण छोड रहा है, तो वह राम को धिक्कारने लगा कि साधु होकर ऐसी असाधुता का काम करते हो। तब राम ने नारायण का रूप धारण कर लिया और उसको अपनी प्रतिज्ञा-भंग की याद दिलाई।

बाली डर गया। उसे ज्ञात हो गया कि दड के दिन आ गये। अतः उसने सुग्रीव, अगद और हनुमान को राम की शरण मे सौपा और अपना अन्त करने के लिए तैयार हो गया। राम ने उसकी क्षति को समझा और चाहा कि उसका प्राणान्त न हो। राम ने बाली से कहा कि केवल एक बूद रक्त की दे दो, जिससे ब्रह्मास्त्र का प्रभाव बना रहे। तुम्हारे शरीर मे बाल के सातवें भाग से अधिक घाव न होगा।

परन्तु जो यश के पुजारी हैं उनको मृत्यु प्यारी होती है। अपमान सूचक छोटा-सा घाव भी अगीकृत नही है। बाली तो इन्द्र का बेटा था। भला वह इस अपमान को कैसे सह सकता था, जिससे देवो मे उसकी हँसी हो।

अपने निश्चय पर दृढ होकर वाली ने सुग्रीव को उपदेश दिया[1] कि तुम राम की भक्ति करना। फिर उसने तीर लिया और अपने हृदय मे वेध कर सदा के लिए आखे वन्द कर ली।

: २२ .

युद्ध की तैयारी

वाली की अन्त्येष्टि के पश्चात सुग्रीव ने राम को खीदखिन् मे रहने के लिए बुलाया, परन्तु राम ने स्वीकार नही किया। अत सुग्रीव ने कहा कि आप गँधामास मे रहिये। मैं खीदखिन से सेना लाता हूँ।

जव राम गँधामास मे ठहरे हुए थे तभी उनको एक मोर मिला, जिसने सीता की सूचना दी, और एक वन्दर मिला जिसकी ओर सीता ने एक वस्त्र फेक दिया था कि राम को दे देना।

---

१ थाई भापा मे एक पुस्तक है 'वाली की भाई को शिक्षा।' इसमे वर्णन है कि सेवक का स्वामी के प्रति क्या कर्तव्य है।

राम ने सात दिन प्रतीक्षा की। सुग्रीव के लौटने के कोई लक्षण दिखाई न पड़े। अन्त में लक्ष्मण उसकी तलाश में निकले। सुग्रीव ने बताया कि समस्त देश में गड़बड़ मची हुई है। सेना एकत्रित करने में कुछ समय लगेगा। परन्तु उसने वचन दिया कि वह कल राम से अवश्य मिलेगा।

प्रातःकाल ही सुग्रीव और हनुमान राम से मिलने चल दिये। गँधामास में पहुँच कर सुग्रीव ने बताया कि बाली का मित्र जम्मू राजा अपने मित्र की मृत्यु का बदला लेने के खीदखिन के लोगों को इकट्ठा करना चाहता है। इसलिए राम ने पत्र लिखकर उसको बुलाया। जम्बू को पत्र तो मिल गया परन्तु उसको विश्वास नही हुआ कि यह राम का ही पत्र है। अत वह स्वयं तो नही आया परन्तु अपनी भक्ति का आश्वासन दिया। परन्तु हनुमान इससे संतुष्ट नही हुए। उन्होने माया के बल से महल के सब लोगों को सुला दिया और जिस पलंग पर जम्बू सो रहा था उसे उठाकर राम के पास ले आये।

जब जम्बू जागा और देखा कि वह तो नारायण के सामने हैं, तो उसने नि संकोच अपनी भक्ति प्रकट की।

प्रात.काल जब रानी ने अपने पति जम्बू को महल में नही पाया तो वह जान गई कि अवश्य ही हनुमान उनको उठा ले गया। इसलिए उसने राजा के भतीजे नीलबद् से कहा कि वह अपने चाचा की खोज में जाय। उसने मक्खी का रूप धारण किया और वहाँ जा पहुँचा, जहाँ जम्बू बैठा था। उसने जम्बू के कान के पास जाकर पूछा कि वह राजधानी से कैसे चले आये ? तो राजा ने सच बात बता दी और कहा

कि अब तो नारायण का काम पूरा करना है, अत अभी राजधानी को नही लौटा जा सकता। उसने नीलबद् को राम से मिला दिया। नीलबद् ने जबू के राम की सेवा करने से तो प्रसन्नता प्रकट की। पर उसका हनुमान के प्रति वैर-भाव कम नही हुआ।

राम ने नीलबद् और सुग्रीव से कहा कि वे अपनी-अपनी राजधानी को लौट जाय और अपनी सेना ले आयं। जम्बू वृद्ध था इसलिए राम ने उससे कहा कि वह तो अपनी राजधानी लौट जाकर राज करे और खीदखिन मे भी सुग्रीव का प्रतिनिधि बनकर शासन करे।

शीघ्र दोनो सेनाए कट्ठी हो गई, जम्बू की सेना नीलबद् की अध्यक्षता मे और खीदखिन् की सेना सुग्रीव की अध्यक्षता मे। इनके अठारह सेनाध्यक्ष थे। यह सब गँधामास पर्वत की तलहटी मे इकट्ठे हो गये।

२३

हनुमान की लंका-यात्रा

जब सब तैयारिया हो गई तो राम ने तुरन्त ही लका पर चढाई करने का विचार किया। पहले सैनिको और सेनाध्यक्षो की सभा बुलाई गई। यह निश्चय हुआ कि मुख्य सेना के कूच करने से पूर्व एक परीक्षक दल हनुमान, जम्बू

बल, और नीलबद् की अध्यक्षता में भेजा जाय। उनका यह भी काम था कि सीता के निवास-स्थान का भी पता लगाकर सीता को सूचना दे दे।

राम ने हनुमान को अपनी अगूठी और सीता का चीर दिया जिससे सीता पहिचान सके कि यह वस्तुतः राम का ही दूत है। परन्तु हनुमान को भय था कि शायद वह मुझे शत्रु समझे। क्योंकि इन चिन्हों को तो राक्षस भी कपट से प्राप्त कर सकता है। इसलिए राम ने हनुमान को कहा कि यदि सीता के मन मे तुमरेह प्रति कोई शका उठे तो मैं तुमको एक ऐसी गुप्त बात बताता हूं, जिसका पता मेरे और सीता के अतिरिक्त किसी अन्य को नही है। वह बात यह थी कि मिथिला के महलों की खिड़की मे से उन दोनों ने किस प्रकार विवाह से पूर्व एक दूसरे को देखा था और किस प्रकार उनके हृदयों मे परस्पर प्रेम का बीज उठा था। सीता की शकाओं के निवारण करने की यह सब सामग्री लेकर हनुमान और उनके साथी चल पड़े।

बहुत दिनों की यात्रा के पश्चात ये सव लोग यमन नगर में आये। यह नगर उजडा हुआ था। यहा केवल पुषमाली नामक एक अभागी अप्सरा दिन काट रही थी जिसको किसी अभिशाप के कारण स्वर्ग से निकाल दिया गया था। इसका एक मात्र दोष यह था कि इसकी सहायता से यमन के राजा तवन ने स्वर्ग की अप्सरा रभा को हथिया लिया था। इसके दड स्वरूप ईश्वर ने उसके पूरे देश को विध्वंस कर दिया। पुषमाली वही अकेली रहने लगी। उसे यह कहा कि जब राम के सैनिक आयेगे और उससे भेट करेंगे तब उसकी

मुक्ति होगी। हनुमान उससे मिले और कहा कि मैं राम का दूत हूँ। परन्तु पुपमाली को शका हुई। उसने कहा कुछ चमत्कार दिखाओ तव मैं जानूँ कि तुम राम के सच्चे दूत हो। यह सुन हनुमान ने चतुर्मुखी और अष्टभुजी विराट रूप धारण कर लिया और उनके चारो मुखों से अनेक सूर्य, चन्द्र तथा तारागण चमने लगे। पुपमाली मान गई और उसने हनुमान को लका का रास्ता वता दिया। वह अप्सरा इतनी रूपवती थी कि हनुमान प्रेम के वश हो गया और पुपमाली ने भी प्रेम का उत्तर प्रेम से दिया। कुछ दिनो के प्रेम पूर्वक सहवास के पश्चात हनुमान ने उस अप्सरा को स्वर्ग भेज दिया और वह अभिशाप से छूट गई।

पुपमाली द्वारा वताये मार्ग पर चलते-चलते ये लोग महानदी पर आये। महानदी वडी तेज गतिवाली नदी थी। इसे पार करना वडा कठिन था। परन्तु हनुमान के लिए तो कुछ भी कठिन न था। उन्होने अपनी पूछ नदी के एक तट से दूसरे तट तक फैला दी। यह एक अच्छा पुल वन गया और समस्त सेना-दल नदी के पार उतर गया। इसके बाद वे हेमतीख पर्वत पर पहुचे, जिसके तल वहुत भेवडा समुद्र लहरे मार रहा था। अव तो फिर सेना की गति मे वाधा पड गई। सामने कही भूमि दिखाई ही नही देती थी। अथाह और अपार सागर सामने लहरा रहा था।

अब क्या किया जाय ? पराक्रमी हनुमान वोले कि शतायु के समान यशस्वी मृत्यु मुझे प्रिय है, परन्तु यह स्वीकार नही कि समुद्र से हार मान लू। शतायु का नाम आते ही एक विचित्र जादू हो गया। निकटस्थ पहाड की एक खोह

में से समवादी नाम का एक पक्षी निकला, जो शतायु का वड़ा भाई था। उसके पर कटे हुए थे और वह विपत्तिग्रस्त मालूम होता था। जब शतायु अनजान बालक था तब उसने उषा काल में सूर्य को खिड़की जैसी चीज से बाहर चमकता हुआ देखा। उसने समझा कि कोई अच्छा फल है। उसे लेने के लिए वह उड़ा। अपने भाई को विपत्ति से बचाने के लिए समवादी ने उसको अपने पैरों में छिपा लिया। और सूर्य भगवान का समस्त क्रोध अपने ऊपर ले लिया। उसके सब पख जल गये। यह देख सूर्य भगवान ने उसे बताया कि उसके नये पंख तभी उगेगे जब राम का दल तीन बार स्वागत ध्वनि करेगा। अन्त मे आज वह अवसर आ ही गया। यह समय शोक का भी था और हर्ष का भी। उन्होंने शतायु की मृत्यु के दुखद समाचार सुनाये। परन्तु साथ ही स्वागत-ध्वनि के द्वारा उसके नये पंख भी उपजा दिये जिससे उसमे नये जीवन और नई शक्ति का सचार हो गया और वह आकाश मे उड़ने लगा।

कृतज्ञ पक्षी ने हनुमान से कहा कि मेरी पीठ पर बैठ जाओ और मैं तुमको गध शिखर पर्वत पर लिये चलता हूँ, जो हेमतीरन और लका के वीच मे है। जब वे वहां पहुंचे तो समवादी ने हनुमान को नीलकाल पर्वत दिखाया, जिसकी ऊ ची चोटियाँ आसमान से वातें कर रही थी।

हनुमान ने एक छलांग मारी और वहां से निर्दिष्ट स्थान की ओर उड़ा। परन्तु मार्ग मे एक बड़ी भयानक राक्षसी मिली, जिसको दशकठ ने समुद्र को सुरक्षित रखने के लिए नियत किया हुआ था। हनुमान उसके मुँह में घुस गया और

उसकी आते बाहर निकाल ली । इससे राक्षसी मर गई और समुद्र के जन्तुओ ने उसको चट कर दिया ।

हनुमान की छलाग इतनी बडी थी कि वह नीलकाल पर्वत के भी आगे बढ गये । और सोलाह पर्वत पर जा पहुंचे जहा नारद ऋषि रहते थे । हनुमान ने वहां एक रात ठहरने की अनुमति मागी । नारद ने एक झोंपड़ी बता दी । परन्तु हनुमान को नारद की महत्ता की परीक्षा लेनी थी । उन्होंने अपना शरीर इतना बढाया कि वे झोपड़े मे नही समाये । अनन्त शक्ति वाले ऋषि के प्रताप से झोपड़ी बडी होती गई, परन्तु हनुमान भी अपना शरीर बढाते ही गये । यह देख ऋषि ने हनुमान को शिक्षा देने के हेतु इतना पानी बरसाया कि ठड के मारे उनका शरीर ठिठुरकर फिर पहला जैसा ही हो गया । ऋषि हनुमान को झोपड़े मे जाडा खाते छोड एक तालाब मे घुस गये और वहा एक लकड़ी को जोंक मे परिवर्तित कर दिया ।

हनुमान को यह बात मालूम न थी । वह स्वभावतः प्रातः काल तालाब पर नहाने गये । जैसे ही हनुमान ने गोता लगाया वह जोक हनुमान की डाढी से चिपक गई । हनुमान ने उसे छुड़ाना चाहा, परन्तु वह इतनी चिकनी और लचलचीली थी कि छुडाये न छूटी । अन्त में हनुमान ने सोचा कि अरे यह तो मेरी ही उद्दडता का दड है । हनुमान प्रायश्चित्त के रूप मे ऋषि के पास गये और उनसे क्षमा मागी । जोंक तभी छूट पडी ।

: २४ :

लंका-दहन

हनुमान ने नारद से विदा ली और लंका को चल दिये। एक छलांग में वह नील-काल पर्वत पर चढ गये। उसके सरक्षक को, जो चतुर्मुख और अष्टभुजी था, मारकर हनुमान राक्षस के रूप मे लका में प्रविष्ट हुए। अधेरी रात थी और सहपति ब्रह्मा की सृष्टि का सौन्दर्य दिखाई नही पडता था। हनुमान ने रात के अंधकार से लाभ उठाया। माया के जोर से सब लंका-वासियों को सुला दिया और हर्षपूर्वक दशकठ के महलों में प्रवेश किया। वह एक दालान से दूसरे दालान और एक कमरे से दूसरे कमरे में फिरते रहे परन्तु सीता का कही कोई चिन्ह दिखाई नही पड़ा।

लज्जित होकर वह नारद के पास आये और ऋषि से परामर्श लिया। नारद के कहने से उन्होंने एक छोटे बन्दर का रूप धारण कर लिया और वाटिका मे जा घुसे। वहां सीता इस प्रकार छिपी बैठी थी जैसे बादलो मे चन्द्रमा छिप जाता है।

इतनी देर में दिन हो गया था। अतः हनुमान दिन भर छिपे रहे और अंधेरी रात की प्रतीक्षा करने लगे। जब रात का समय हुआ तो दशकठ नारायण की पत्नी (सीता) को मनाने के लिए वाटिका में आया। सीता से उसने बहुत अनुनय तथा विनय के साथ प्रेम-याचना की। परन्तु भक्ति पूर्ण

शुद्ध हृदय मे कोई बुरी भावना उठ नही सकती। दशकठ निराश होकर लौट गया, परन्तु वह पहले से अधिक क्रुद्ध था।

इस सबसे सीता का धैर्य छूट रहा था। उसे निरन्तर इसी प्रकार अपमान-सूचक अनुनय-विनय सुनने को मिलती थी। इस कारण अब उसने ठान लिया कि इस शरीर का शीघ्र ही अत कर देना चाहिए। इस विचार के आते ही वह एक वृक्ष के नीचे गई और वहां अपने को फासी लगानी चाही। यह देख हनुमान चौंक पड़े। उन्हें आशा न थी कि सीता इस प्रकार अपने प्राण देने के लिए उद्यत हो जायगी।

वह वृक्ष पर चढ गये और रस्सी की गाठ खोल दी। उसे बडी प्रसन्नता हुई जब यह मालूम हुआ कि सीता अभी जीवित है। उन्होने सीता को अपना परिचय दिया और कहा कि राम लका पर चढाई करके आपको छुडाने का उद्योग कर रहे हैं।

जब सीता को हनुमान की सत्यता पर विश्वास हो गया तो उनके मुख पर हर्ष के आसू बहने लगे। निराशा की लम्बी अधियारी के पश्चात यह आशा की पहली झलक थी। सीता ने समझ लिया कि अब उसको अपमानित करनेवाले अजेय राक्षस का भी राम के बाणो से अन्त होनेवाला है। हनुमान ने चाहा कि सीता को अपनी हथेली पर बिठाकर राम के पास ले जाय। परन्तु सीता इसके लिए राजी नही हुई। दश-कठ के द्वारा हरण किये जाने से उसका बहुत बडा अपमान हो चुका था। वह यह नही चाहती थी कि अब दूसरी बार किसी पर पुरुष के साथ वह भाग निकले। उसने कहा कि

उसके आश्वासन से उसके हृदय में नई आशा की किरण उत्पन्न हो गई है। अतः अब वह राम के लिए जीवित रहेगी।

इतना पता लग जाने के बाद हनुमान ने सीता से बिदा ली और हिमतीरन पर्वत की ओर चल पड़े। परन्तु नगर को छोडने से पूर्व वह अपने आने के कुछ चिन्ह भी छोड़ जाना चाहते थे। अत' उन्होने छलांग मार-मार कर दशकठ के वाग के बहुत से पेड़ उजाड दिये। उन्हे पकडने के लिए बहुत-से राक्षस झपटे, परन्तु सबको अपनी जान गवानी पड़ी। दशकंठ के हजार पुत्र (सहस्र कुमार) भी कुछ न कर सके। यह देख इन्द्रजित आगे बढा। इसने युद्ध में देवलोक के अधिपति के भी दात खट्टे कर दिये थे। राक्षसो की शक्ति की परीक्षा लेने के हेतु हनुमान इन्द्रजित की रस्सी से बध गये और लंका के राजा दशकठ के सामने लाये गए। दशकंठ ने हनुमान की वीरता की प्रशंसा की ओर कहा कि तुम हमारी सेना में सम्मिलित हो जाओ। परन्तु हनुमान ने कहा कि दूसरे की दासता करने से तो मर जाना अच्छा है। क्या वह उसकी पूछ से रुई लपेटकर उसको आग लगा देगे ? राक्षसों ने ऐसा ही किया और बन्दर का समस्त शरीर जल उठा। इसके बाद हनुमान पर्वताकार हो गया और उसके शरीर से अग्नि की ज्वालाये निकलने लगी। एक झटके से उसने अपने बधन तोड़ दिये और लंका की गलियों में घूमने लगे। वायु-पुत्र हनुमान एक छत से दूसरी छत पर कूदने लगे और इस प्रकार सारी लका पुरी मे आग लग गई। आन की आन मे सारे राजमहल जलकर राख हो गये और सोने की लका राख का ढेर वन गई।

लका को जलाकर हनुमान ने समुद्र मे कूदकर आग बुझाई। परन्तु उनकी पूछ तो अब भी जल रही थी। कोई पानी उसे बुझा न सका। हताश होकर हनुमान ने नारद से परामर्श लिया। नारद बोले—

"अरे हनुमान, तू इतना मूर्ख है। तुझे अपने छोटे-से कुएँ का पता नही ?"

हनुमान समझ गये और पूछ को अपने मुँह में रख लिया। आग तुरत बुझ गई। इसके बाद अपने पराक्रमो का साथियों के सामने वर्णन करते हुए वे सब हर्ष के मारे कूदते-फादते राम को सूचना देने के लिए गँधामास पर्वत पर लौट आये।

राम ने जब हनुमान के पराक्रम सुने तो उनको भय हुआ कि सीता को कुछ हानि न पहुंचे। वह तो अब भी शत्रु के हाथ मे है।

"हनुमान तुमने बुरा किया।"

"महाराज, मैंने यह थोडे ही बताया है कि मैं राम का दूत हूं। दशकठ को क्या पता कि मैं कौन हूं।" हनुमान बोले।

राम की सेना लका पर चढाई करने चल पड़ी और कुछ ही दिनो के पश्चात उस स्थान पर डेरा डाला, जहा समुद्र देव लका को घेरे हुए लहरे मार रहे थे।

विभेक की रामभक्ति

दशकठ आराम से सो रहा था। उसे पता भी नही था कि कोई विपत्ति आने वाली है। लंका-दहन से नगर को हानि अवश्य हुई थी, परन्तु जिस दशकंठ के बस में समस्त देवता थे, उसके लिए हनुमान की इस उद्दडता के चिह्नों को साफ कर डालना क्या कठिन था। शीघ्र ही लका का पुर्ननिर्माण कर दिया गया और वह पहले से भी अधिक सुन्दर नगरी वन गई।

इसी बीच एक रात को दशकठ ने एक भयानक स्वप्न देखा। स्वप्न यह था कि स्वर्ग मे दो चीले लड़ पड़ी। काली चील पश्चिम से आई और सफेद चील दक्षिण से। काली चील मर गई और उसके शरीर से एक राक्षस उत्पन्न हुआ। साथ ही उसने एक दृश्य और देखा कि उसने एक नारियल मे कुछ तेल डाला और बत्ती रखकर उसे अपने हाथ मे उठा लिया। एक स्त्री आई और उसने बत्ती जला दी। वत्ती ने समस्त दीपक को जला दिया और आग उसकी हथेली तक पहुंच गई। उसके सारे शरीर मे जलन होने लगी। तभी दशकठ की आख खुल गई और वह भय से कांपने लगा। उसकी बीसों आखों से भय के चिह्न दिखाई पड़ रहे थे।

सुबह होने पर दशकठ ने विभेक को बुलाया और पूछा कि इस स्वप्न का क्या अर्थ है। विभेक ने बताया कि काली

चील दशकठ है और सफेद चील राम। राम दशकठ को पराजित करेंगे। नारियल लका है, तेल दशकठ का वश है और वत्ती दशकठ है। जिस स्त्री ने बत्ती जलाई वह सम्मनखा हैं और जो ज्वाला उठी वह सीता है। स्वप्न इसलिए हुआ है कि नक्षत्रों द्वारा दशकठ पर जो विपत्ति आनेवाली है उसकी सूचना पहले से हो जाय। ज्योतिष-शास्त्र मे कोई ऐसा उपाय नही है, जिससे इस आपत्ति से बचाव हो सके। इसका एक ही इलाज है कि सीता को लौटा दिया जाय और राम से क्षमा माग ली जाय।

परन्तु जैसे मृत्यु का ग्रास ओषिध-सेवन से इन्कार करता है, इसी प्रकार दशकठ ने विभेक की बात नही मानी। उल्टा विभेक पर ही उसे क्रोध आया। विभेक का भला यह साहस कि वह मुझे राम से भी निर्बल समझे! उसने उसके सामने उसके शत्रु राम की प्रशसा कैसे की? क्रोध से आग बवूला होकर दशकठ ने विभेक को लका से निकाल दिया और उसकी स्त्री त्रिजटा को सीता पर पहरा देने को नियुक्त किया।

देश और घर से निकाला जाकर विभेक बन्दरो की छावनी में आया और राम की शरण ली। परन्तु जब उसने सुग्रीव की सेना देखी तो बडा अचम्भा हुआ। लका का राजा तो इतना बलवान है कि देवेन्द्र इन्द्र भी उससे भय खाते हैं। क्या ये सब बन्दर हनुमान-जैसे ही बली हैं? विभेक की इस शंका को दूर करने के हेतु सुग्रीव ने बन्दरो को आज्ञा दी कि वे अपनी शक्ति का प्रदर्शन करें।

बन्दरो की शक्ति का प्रदर्शन देखकर बड़े-से-बडे साहसी

दंग रह गये ! किन्हीने पहाड़ उठाकर हथेली पर रख लिया तो किन्ही ने सूर्य को छिपाकर ससार को अंधकारमय बना दिया। किन्ही ने समुद्र को सुखा डाला तो किन्ही ने इतना बड़ा तूफान खड़ा कर दिया मानो प्रलय ही आनेवाला है।

इस प्रदर्शन से इतना जवर्दस्त कोलाहल हुआ कि दशकंठ तक इसकी खवर जा पहुंची। दशकठ के बीसों कान खड़े हो गये। यह कैसा कोलाहल है, जो लंका की शान्ति को भंग कर रहा है? क्या मृत्युदेव ने अपना नगाडा वजाया है? मन्त्रियों ने उसे वताया कि यह कोलाहल राम के दल का है। लेकिन दशकठ को विश्वास नहीं हुआ कि सचमुच राम की सेना इतनी विशाल होगी। कही ढोल की पोल तो नहीं है? इसका ठीक-ठीक पता लगाने के लिए दशकठ ने राक्षस शुक्र-सर को भेजा कि शीघ्र जाकर देखे और तुरन्त खवर दे। राक्षस ने चील का रूप धारण किया और राम के दल के समीप जा पहुंचा। वहां जाकर यह वन्दर वन गया और बदरों के वीच में रहने लगा, परन्तु विभेक ने जान लिया कि यह तो राक्षस है और हनुमान को इसकी सूचना कर दी। हनुमान ने तुरन्त अपनी हथेली इतनी वडी वना ली मानो वह कोई वडा तम्बू हो और उससे समस्त सेना को ढक लिया। सारे वदर एक-एक करके उसकी उगलियो में से होकर निकलने लगे। अत में वदर के रूप में शुक्रसर निकला। परंतु उसमे और दूसरे वदरो में भिन्नता थी। एक तो उसकी छाया नही पडती थी, दूसरे उसकी आंखों की पलके झपकती नही थी। वह तुरन्त पहचान लिया गया। उसपर वडी मार पडी, परन्तु उसको छोड़ दिया गया कि जाकर अपने

राजा को सब हाल बता दे ।

जब उसके सेवक को कुछ सफलता न मिली तो दशकंठ स्वयं साधु का वेश बनाकर आया । साधु का वेश देखकर राम ने उसका सम्मान और आतिथ्य-सत्कार किया, लेकिन विभेक ने उसको पहचान लिया । फिरभी वह कुछ बोल नहीं सका, क्योंकि उसके भाई दशकंठ ने अपनी माया से उसे गूंगा बना दिया था । ऐसा करने में दशकंठ का एकमात्र उद्देश्य यह था कि वह राम से कहे कि वह लंका पर चढ़ाई न करे । परन्तु उसका यह परिश्रम व्यर्थ हुआ, क्योंकि राम तो पीछे हटना जानते ही न थे । तब दशकंठ चिन्तित होकर लंकापुरी को लौट गया ।

दशकंठ चालाक तो था ही, घर जाकर उसे एक चाल सूझी । उसने विभेक की लड़की बेन्चकाय को आज्ञा दी कि तू सीता का रूप रखकर शत्रुदल के निकट की जलधारा में इस तरह पानी पर तैरने लग कि जिससे लोग यह समझें कि सीता मर गई है ।

प्रातःकाल नित्य के समान जब राम नहाने आये तो जलधारा में उन्होंने सीता की लाश को पानी पर तैरते देखा । यह देख उनको बड़ा दुःख हुआ, मानो उनके प्राण ही निकल रहे हैं । वह वहीं विलाप करने लगे । उसे सुनकर लक्ष्मण भी वहां आ गये और दोनों दुःखी होकर रोने लगे । उनकी इस यात्रा का क्या यही अंत होना था ? सैकड़ों यातनाएं सहीं, जंगलों में भटके, क्या इसीलिए कि सीता की यह गति हो ! उसकी अस्थियों के लिए कोई अस्थि पात्र न मिले । विदेशों में उसकी लाश पानी पर तैरती रहे ! उसकी विदाई पर

समुद्र की लहरों की आवाज को छोडकर कोई बाजा भी न वजे ! उसकी अतिम शय्या[1] पर कोई छतरी तक न हो सिवा जगली वृक्षों की डालियों के ! यह सब सोचकर उनका हृदय विदीर्ण हो गया और वह निरन्तर विलाप करते रहे। यह सुनकर हनुमान, विभेक और अन्य सेनाध्यक्ष भी वहां पर आ गये। हनुमान को देखते ही राम का क्रोध उवल पडा। उन्होने सोचा कि इस बन्दर की धृष्टता के कारण ही यह सब कुछ हुआ और लका-दहन का वदला दशकठ ने सीता की हत्या करके लिया।

लेकिन हनुमान खड़े-खड़े तैरती हुई लाश को देखते रहे। उनको एक शका हुई कि यह लाश अभी सडी तो है नही। फिर वह नदी पर तैर कैसे सकती है, और वह भी वहाव के ऊपर की ओर। उनकी इस शका को सुनकर सवके चेहरो पर आशा की रेखा चमकने लगी। हनुमान की सूचना पर लाश को चिता पर रक्खा गया। तव तो वेन्चकाय चीख मारकर उठ खडी हुई और अपने असली रूप मे आकर आकाश को उड़ गई। परन्तु पवन-सुत ने फौरन लपककर उसे पकड लिया। सुग्रीव ने ऐसी मार लगाई कि उसे वताना पडा कि वह कौन है ?

जब यह मालूम हो गया कि यह विभेक की लडकी है, तो राम ने कहा कि विभेक ही इसका न्याय करेगे। विभेक ने पितृ-स्नेह को त्यागकर न्याय किया और कहा कि गुप्तचर के लिए यही सजा है कि उसे मृत्यु का दंड दिया जाय। राम

---

[1] थाई देश मे अन्त्येष्टि संस्कार इसी प्रकार होता है।—ले०

विभेक की निष्पक्षता से बड़े प्रसन्न हुए और उन्होने आज्ञा दी कि इसे क्षमा कर दिया जाय और हनुमान जाकर इसे लंका पहुचा आवे। मार्ग मे हनुमान को उससे प्रेम हो गया। परिणाम यह हुआ कि लका पहुचने से पूर्व ही बेन्चकाय हनुमान की पत्नी बन गई और बाद में उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम असुरपाद रखा गया।

: २६ :

सेतु-बन्ध

अब यह निश्चय किया गया कि सेना पार करने के लिए समुद्र पर पुल बनाया जाय। तुरन्त हनुमान और नीलबद् ने बन्दरों को इकट्‌ठा किया और अनन्त समुद्र को शान्त बनाने का उद्योग आरम्भ कर दिया। परन्तु यहा नीलबद् के हाथ एक ऐसा अवसर आ गया कि जिससे हनुमान ने उसके चाचा जम्बू के साथ जो दुर्व्यवहार किया था, उसका बदला लिया जा सके। वह बडी-बडी चट्टानो को काट-काट कर डालने लगा और हनुमान को उनको उठाने और जमाने का काम दिया गया। नीलवद् तो हनुमान को अपमानित करना चाहता था। इसलिए उसने इतनी जल्दी-जल्दी पत्थर गिराये कि हनुमान को उनके उठाने मे कठिनाई होने लगी, परन्तु हनुमान शान्तिपूर्वक काम करते गये। उन्होने सोचा कि मेरा भी दाव कभी लगेगा, तब मैं इसे मजा चखा दूगा।

थोड़ी देर के पश्चात् उन्होने काम की बदली कर ली।

हनुमान ने अब अपने एक-एक बाल से एक-एक चट्टान बांध ली और नीलवद् से कहा कि जल्दी-जल्दी ढोते जाओ। परन्तु नीलवद् के लिए ऐसा करना असम्भव था। पहले तो कहा-सुनी हुई, फिर हाथापाई होने लगी। जब राम को पता लगा तो उन्होंने कहा कि यह तो बुरी बात है कि दो बड़े सेनाध्यक्ष इस प्रकार से आपस मे लड़े। फिर दूसरे सिपाही ऐसा क्यों न करेंगे? नीलवद् को आज्ञा हुई कि वह देश को लौट जाय और सुग्रीव के स्थान में राज्य करे और वहां से सेना को रसद पहुचाये। हनुमान को आज्ञा हुई कि जैसे बने सात दिन में पुल बना दो।

हनुमान बड़े जोर-शोर से काम करने लगे और समुद्र में चट्टानो की कतार लग गई। दशकंठ के कान में पुल बनाने का यह शोर सुनाई पडा और उसकी आंखो की नीद उड़ गई। उसने इस काम में बाधा पैदा करने की सोची। उसे मछली से उत्पन्न हुई अपनी लड़की स्वर्णमच्छा की याद आई। उसने उसे बुलाकर कहा कि तुम अपनी सहेलियों के साथ जहां पुल बन रहा है वहां जाओ और जो पत्थर समुद्र मे गिरे, उन्हे हटाकर अलग पटकती जाओ।

हनुमान चकित रह गये, क्योंकि जो पत्थर वह गिराते, वही समुद्र की तह मे लुप्त हो जाता। यह देख हनुमान ने समुद्र मे गोता लगाया तो वहां उन्होने स्वर्णमच्छा और उसकी सहेलियों को पत्थर हटाते देखा। हनुमान ने उनको वाधित किया कि वे पत्थरों को जहां-के-तहां लाकर लगा दे। हनुमान ने यहां भी रूपवती स्वर्णमच्छा से प्रेम निवेदन किया और वह राजी हो गई। फलस्वरूप जब वह अपने पिता के पास अपनी पराजय की बात कहने गई तो उस समय उसके पेट में हनुमान

का मत्स्य पुत्र मच्छानु था। दशकठ के डर से उसने उसे अपने गर्भाशय से निकालकर समुद्र के तट पर फेक दिया था और देवताओं से अनुरोध किया था कि वे उसकी रक्षा करे।

इधर पुल तैयार हो गया और समुद्र पार जाने का मार्ग बन गया। इन्द्र ने राम को अपना रथ दिया, जिसको मातली हाक रहा था। इस प्रकार राम का दल पुल को पार करके लकापुरी पहुच गया।

एक रमणीक हरे-भरे स्थान पर, जहा मखमल के समान घास उगी हुई थी, सेना ने पडाव डाला। परन्तु यह तो एक माया-वन था। यहा न कोई पक्षी गीत गा सकता, न फल खा सकता था। दशकठ ने भानुराज नामी राक्षस को आज्ञा दी थी कि "एक मायावी जगल बनाओ और उसे अपने सिर पर उठाये रहो। जब राम की सेना उसपर पडाव डाले तब उसे जमीन मे धसा दो। परन्तु भानुराज मे हनुमान जैसी बुद्धि न थी। हनुमान राक्षस की यह चाल समझ गये। वह भूमि के भीतर घुस गये और राक्षस को मार गिराया।

अब राम ने अगद को दशकठ के पास भेजा कि या तो वह सीता को वापस कर दे या लडाई करे। अनेक राक्षसो को मारकर अगद दशकठ के दरबार मे पहुचे। दशकठ के दरबार मे राम के दूत के लिए अगद ने कोई स्थान न देखा तो उन्होने अपनी पूछ बढा ली और उसीकी कुंडली बनाते-बनाते इतनी ऊची गद्दी बनाई कि वह दशकठ के मच से भी ऊची हो गई। उस गद्दी पर बैठकर अगद ने राम का सदेश बडी तीव्र भाषा मे कहना आरम्भ किया। दशकठ को अगद के कड़े शब्द सुनकर बड़ा क्रोध आया। उसने अपने चार

वीरों को आज्ञा दी कि वे अगद को तुरन्त मार डालें। परन्तु अगद ने सहज में ही उन चारों को मार गिराया और अपने दूत-कार्य की सूचना देने के लिए अपने पडाव पर लौट आये।

अव दशकठ ने राम की सेना को मारने के लिए कोई माया रचने का स्वयं यत्न किया। ब्रह्मा ने उसको एक दिव्य छत्र दिया था। उसके खुलने से सूर्य छिप जाता और जगत-भर मे अधेरा हो जाता। उसने उस छत्र को खोल दिया। चारों ओर अधेरा छा गया और राम तथा उनके दल को लंका दिखाई न पडी। परन्तु सुग्रीव उससे भी वली निकले। आकाश मे जाकर उन्होने छत्र तोड़ डाला। सूर्य की किरणे फिर निकल आई और राक्षसो की राजधानी लका फिर दिखाई पड़ने लगी। जब सुग्रीव आकाश से लौट रहे थे तो उन्होने लंकापति के सिर से मुकुट छीन लिये और अपने महाराज राम के चरणों में लाकर रख दिये।

दशकंठ चिन्तित होकर अपने महलो मे चला गया। अव उसको निश्चय हो गया कि लका वचने की नही। यदि शत्रु को पराजित करना है, तो कोई और उपाय सोचना पड़ेगा।

: २७ :

राम का हरण

अपने महल मे पडे-पडे दशकंठ को एक तरकीव सूझी। उसने मारीश के पुत्र वैयविक् को पाताल भेजा और सह-मालिवन के पुत्र अर्थात् महायम के पुत्र मैयराव को लका

बुलाया। मैयराव पाताल मे राज करता था। उससे सभी डरते थे। उसने अपने गुरु सुमेघ मुनि से युद्ध-विद्या के बहुत-से रहस्य सीखे थे। सुमेघ मैयराव से इतना खुश था कि उसने मैयराव के आत्मा को उसके शरीर से निकालकर भौंरे के रूप मे त्रिकूट पर्वत पर छिपा दिया था। इससे मैय-राव लगभग अमर-सा हो गया था और उसको मृत्यु का भय न था। दशकठ ने निराश होकर अमर मैयराव की शरण ली।

मैयराव के पास एक मायावी राख थी। उससे वह नीद बुला सकता था। वह इस राख को लेकर वन्दरो के पडाव मे आया। बहुत सावधानी करने पर भी वह विभेक की आखो से न बच सका। उसकी भावभगी से स्पष्ट हो गया कि कोई विपत्ति आनेवाली है। उसने पहले से ही विपत्ति से बचने का उपाय सोच लिया। हनुमान ने ब्रह्मा के बराबर मुह बडा कर लिया और राम को उसमे रख लिया। परन्तु मैयराव की माया के सामने उसकी कुछ न चली।

मैयराव वन्दर का रूप रखकर वन्दरो के दल मे आया। वहां उसे मालूम हुआ कि विभेक ने पहले से ही उनको सचेत कर रक्खा है कि यह माया प्रातकाल से पूर्व ही नष्ट हो जायगी।

मैयराव के पास माया की एक बांसुरी थी। वह सेनादल को छोड़कर पहाड़ पर चढ गया और बासुरी उठाई। माया के जोर से आकाश एक स्थिर समुद्र जैसा दिखाई पडने लगा और प्रातकाल का तारा चमकने लगा। वन्दरो ने हर्ष मनाते हुए सोचा कि रात बीत गई और उन्होने निश्चिन्त होकर

पहरे को ढीला कर दिया।

अब मैयराब अपनी माया की राख को लेकर आया और बासुरी वजाने लगा। धीरे-धीरे सब बन्दरों को नीद आ गई। सुग्रीव सोया पडा था। हनुमान मु ह बनाये निर्जीव-से दिखाई देते थे और सीता के प्राण-प्रिय राम बेहोश थे। सबोको बेहोश देख मैयराब धीरे-धीरे आया और राम को उठाकर पाताल को ले चला।

जब बन्दर जागे तो उनको विपत्ति का पता लगा। परन्तु विभेक तो अपने दिव्य चक्षु से अदृश्य को भी देख रहा था। विभेक के बताये मार्ग से हनुमान दौडे। वह एक तालाब पर पहुंचे, जिसमें बड़े-बड़े कमल खिल रहे थे। उन्होने एक कमल का पत्ता तोड़ा और उसके डठल मे एक खोखला मार्ग दिखाई पडा। हनुमान उसमें होकर एक दीवार के पास पहुंचे जहा एक राक्षस पहरा दे रहा था। उन्होंने उसे एक लात मारी। राक्षस मर गया और दीवार टूट गई। हनुमान आगे बढ़े। वहा उनको एक मदमाता हाथी मिला। हनुमान ने उसको वही पछाड दिया।

हनुमान साहस कर आगे बढते गये। वहा उनको एक पर्वत मिला, जिसपर आग की ज्वाला धधक रही थी। उन्होने लाते मार-मारकर ही उस पर्वत की आग बुझा दी और फिर आगे चले। अव उनको मच्छर मिले, जो मुर्गी के वरावर वडे थे। परन्तु जो हाथी और आग की ज्वालाओं से न डरा, वह इन वेचारे मच्छरों की कव परवा करता? हनुमान थके नही और आगे बढते ही गये। रास्ते मे एक दूसरा तालाव मिला, जिसमे कमल खिल रहे थे। यहां उनको

एक ऐसे व्यक्ति का सामना करना पडा जो उनकी जोड का था।

इस तालाब पर हनुमान के लड़के मच्छानु का पहरा था। जब स्वर्णमच्छा उसको समुद्र के तट पर छोडकर चली गई थी तो मैयराब ने उसे अपने यहा पाला था। मच्छानु तालाव के किनारे पर टहल रहा था तो उसने देखा कि कोई अजनवी आ रहा है। उसने उसका सामना किया। पुत्र ने पिता से युद्ध किया और पिता को भी अपने ही अग से उत्पन्न हुए व्यक्ति से लडना पडा।

युद्ध होता रहा, पर किसी की विजय न हुई। दोनों एक-दूसरे की वीरता को देखकर चकित रह गये और कुछ आशा दीख पडी कि शायद दोनों मे मेल हो जाय। उन्होने एक-दूसरे के विपय मे पूछा और इस प्रकार बाप-बेटे का परिचय हो गया। अव तो जिन भुजाओ से युद्ध हो रहा था वे प्रेम मे एक हो गई।

हनुमान ने मच्छानु को वताया कि वह पाताल क्यो आया है। मच्छानु कृतघ्न न था। वह अपने पालनेवाले का भेद वता नही सकता था। परन्तु वह अपने असली पिता को भी निराश नही करना चाहता था। इसलिए उसने दुपल्ली बाते कही, 'अजी, मार्ग तो दीखता ही है, उसीपर क्यो नही चलते ?

हनुमान के लिए इतना काफी था। उसने एक कमल तोडा। उसके खोखले मे एक मार्ग दिखाई पडा। उसी मार्ग से वह अन्त मे पाताल लोक मे जा पहुंचा। वहा उसे रोती हुई एक स्त्री की विलाप ध्वनि सुनाई पडी जो समस्त पाताल

प्रदेश को गुंजा रही थी। यह मैयराब की बहन बीरवकन थी, जो अपने पुत्र के लिए शोक कर रही थी। उसको आज्ञा हुई थी कि वह एक कढाई चढ़ाये और उसमें अपने पुत्र वैयविक् को राम के साथ भून डाले। परन्तु कोई माता ऐसी नही जो अपने हाथ से अपने पुत्र को ही मार दे। उसका हृदय विदीर्ण हो रहा था और वह रोने-पीटने लगी थी। परन्तु उसमे इतनी शक्ति न थी कि पाताल के राजा की बात न मानती। वह बिचारी रोती-पीटती अपने पुत्र को भूनने के लिए कढाई मे पानी डालती जाती थी कि यकायक उसे चुपके से हनुमान आते हुए दिखाई पड़े। हनुमान ने मां को ढाढस दिया और कहा कि यदि तुम मुझे वहा ले चलो जहा राम को रक्खा गया है, तो मैं तुम्हारे पुत्र की जान बचा दूगा।

यह काम बड़ा कठिन था क्योंकि मार्ग में बडे-बडे बली राक्षस पहरा दे रहे थे। वहा से गुजरने के पहले सबको एक तराजू मे तुलना पडता था। वह तराजू ऐसी बारीक थी कि बाल बराबर भेद भी मालूम हो जाता था। जो उसके बोझ से तिल भर भी बढती पाई जाय तो उसकी निश्चित मौत ही आ जाती। परन्तु हनुमान कोई बात सुननेवाले न थे। उन्होंने आग्रह किया कि किसी प्रकार उन्हें फाटक पर ले चले।

हनुमान ने एक बारीक कमल तन्तु का रूप धारण कर लिया और उसके वस्त्र में लग गये। परन्तु जब वह राक्षसी तराजू पर रक्खी गई तो तराजू टूट गई। उसी समय राक्षसों ने उसके मारने को तलवारे उठा ली। परन्तु वह चिल्लाई कि इसमे उसका कोई दोष नही हैं। उसके पास कुछ नही

है। तराजू ही सडी थी, वह टूट गई, इसमे वह क्या करे ? उन्होने उसकी तलाशी ली और एक कमल-तन्तु के सिवाय उसके पास कुछ न निकला। किसको पता था कि इसी कमल-तन्तु मे नाश का सामान छिपा था। उन्होने उसे जाने दिया।

इस प्रकार सुरक्षित निकल कर हनुमान वहा पहुंचे जहा ताड के वृक्षो मे एक लोहे का पिंजडा रखा हुआ था। वहा राम पडे सोरहे थे। उनको इस विपत्ति का पता तक न था। राम-भक्त हनुमान ने उनको धीरे से उठाया और सुरक्षित स्थान पर रख दिया। अब वह विपत्ति के मूल कारण मैयराव की तलाश मे चले।

मैयराब मिल गया और उन दोनो मे इतना घोर युद्ध हुआ कि सारा पाताल लोक हिल गया। हनुमान ताड के वृक्ष उठा-उठा कर मारते पर राक्षस पर उसका कोई भी प्रभाव न होता था। उस समय वीरक्कन ने स्मरण दिलाया कि मैयराव को एक वरदान है। यह सुनते ही हनुमान ने अपना शरीर वढाया और अपना हाथ त्रिकूट तक फैलाया और मैयराव की आत्मा को जो भौरे के रूप मे छिपा था पकडकर कुचल डाला। ज्यो ही भौंरा मरा मैयराव भी प्राणहीन होकर गिर पडा और लकेश के दुष्ट मित्र का नाश हो गया।

तब हनुमान ने वैयविक को पाताल की गद्दी दी और मच्छानु को उसका युवराज बनाया।

अब हनुमान राम को लेकर वन्दरो की छावनी मे आ गये। सबको बड़ी खुशी हुई। परन्तु राक्षसो को इस घटना से जो दुख हुआ उसका वर्णन नही हो सकता।

कुम्भकरण की मृत्यु

जब मैयराव की मृत्यु का समाचार मालूम हुआ तो सोने की लंका की गद्दी पर बैठा हुआ दशकठ एक बार तो कांप गया।

"अरे! शत्रु इतना प्रवल है कि अमर और अजेय मैयराव भी उसके हाथ से नही वच सका। परन्तु अभी उसका भाई कुम्भकरण भी तो शेप है, जिसको जीतना किसीके भी वस मे नही है।"

अत उसने कुम्भकरण से कहा कि मैयराब का बदला लेने के लिए वह राम से युद्ध करे। परन्तु इस राक्षस के मन मे न्याय के लिए श्रद्धा थी। वह यह नही चाहता था कि सीता न लौटाई जाय और राम से उसके लिए युद्ध किया जाय। उसे जो ठीक मालूम हुआ वह उसने स्पष्ट कह दिया। परन्तु दशकंठ को तो इससे और क्रोध हुआ और वह उसपर तीव्र शब्दों में दोप लगाने लगा।

"अरे! तू राम से ऐसा डरता है, जैसे सिंह की गध से हिरण। अरे, क्या तू वच्चा है, जो तीर की आकृति देखकर डर गया। अभी तो शत्रु की पताका भी नही दीख पड़ी, और अभी से कांपने लगा?"

दशकठ ने कुम्भकरण को इस प्रकार भला-बुरा कहा। लेकिन उसके लड़ाई न करने का तो कारण एक ही था। उसे

अन्याय प्रिय न था ।

इस अपमान को असह्य समझकर कुम्भकरण ने अन्त में शस्त्र उठा लिये और अपने भाई की सहायता करने को निकल पडा ।

विभेक ने दूर से देखा कि उसका भाई कुम्भकरण सेना लिये आ रहा है । विभेक हाथ जोडकर आगे वढा । उसे आशा थी कि कुम्भकरण भाई के प्रेम से न्याय-प्रेम को अधिक मूल्य देगा, परन्तु न्याय-प्रिय होकर भी वह अपने राजा और देश से मुह नही मोड सकता था । उसने विभेक को झिडका और कहा कि, "राम की सहायता करने के लिए तुम्हारे पास इससे अधिक और कोई बहाना नही है कि राम नारायण के अवतार है ।"

यह कह कुम्भकरण ताली वजाकर जोर से हँसा । वह वोला, "क्या राम सचमुच नारायण के अवतार हैं ? यह मैं तो तभी मानूगा जब राम मेरे एक प्रश्न का समाधान कर दे—'मूर्ख साधु कौन ? सीधे दातवाला हाथी कौन ? चालाक स्त्री कौन ? और दुष्ट मनुष्य कौन ?"

राम और उनके साथियो ने बहुत वुद्धि लगाई, पर किसीको उसका उत्तर न सूझा । तव अगद से कहा गया कि वह जाय और कुम्भकरण को फुसलाकर उससे उत्तर ले आये । परन्तु कुम्भकरण अगद की वातो मे आनेवाला न था । अगद ने कहा कि राम को तो उत्तर मालूम है । वह केवल सही उत्तर से मिलाना चाहते हैं । अत वता दो कि तुम्हारा क्या आशय है ? कुम्भकरण ने राम की खिल्ली उडाई और अभिमान से कह उठा—"मूर्ख आदमी तो स्वय राम हैं कि जो सीता को

जगल मे छोड़कर चले गये। सीधे दांतवाला हाथी दशकंठ है, जो अपनी स्त्री से सन्तुष्ट न होकर दूसरे की स्त्री पर दृष्टि डालता है। चालाक स्त्री सम्मनखा है और दुष्ट मनुष्य विभेक है, जो अपने देश और नरेश का विरोधी है।"

अव सुग्रीव की कुम्भकरण से लड़ाई शुरू हो गई। कुम्भकरण सुग्रीव के बल को जानता था। उसने एक उपाय सोचा, जिससे सुग्रीव का बल पहले मन्द पड़ जाय। वह सुग्रीव के बल का मजाक उड़ाने लगा।

"क्या सचमुच तुम इतने ही बली हो जैसाकि लोग कहते हैं?" सुग्रीव मे बुद्धि की अपेक्षा बल अधिक था। वह तुरन्त पर्वत पर दौड़ गया और एक विशाल वृक्ष को उखाड़कर ले आया। दोनों मे युद्ध होने लगा। परन्तु सुग्रीव तो पहले ही थक चुका था। अतः कुम्भकरण ने सुग्रीव को अपनी बगल में दवाया और लंका को चला।

हनुमान ने कपीश की दशा देखी तो उसकी सहायता को दौड़ पड़े। कुम्भकरण हनुमान का सामना न कर सका। उसे सुग्रीव को वही छोड़कर लंका को भाग जाना पडा। हनुमान ने कुम्भकरण के नाक-कान नोंच लिये और उनसे रुधिर वहने लगा।

जीतते-जीतते पराजित होना कुम्भकरण को बुरा लगा। उसने ठान लिया कि अपने यश की रक्षा करनी ही चाहिए। उसके पास एक अस्त्र था, जिसका नाम था 'मोक्खशक्ति'। इसका प्रभाव ऐसा था कि इससे शत्रु बच नहीं सकता था। परन्तु इस अस्त्र को चलाने से पूर्व उसको देवों की आराधना करनी आवश्यक थी। इसलिए एक शुभ मुहूर्त्त में वह नदी के

किनारे गया और आवश्यक अनुष्ठान करने लगा। शीघ्र ही हवन की सुगन्ध वायु में फैल गई ओर फूल खिल गये। अस्त्र सामने रखा था और कुम्भकरण समाधि लगाये ध्यान में बैठा था।

यकायक कुम्भकरण की आख खुली और उसे कुछ घबराहट महसूस हुई। नदी की ओर से एक दुर्गन्ध-सी आ रही थी, जो उसके यज्ञ की सुगन्धि को दूषित कर रही थी। उसे शुद्धि प्रिय थी, अतः वह दुर्गन्ध से घबरा गया। वह उठा और दुर्गन्ध का कारण खोजने लगा। उसने देखा कि मरे कुत्ते की लाश नदी के ऊपर तैर रही है। उसपर कौवा बैठा चोंच से मास नोच-नोचकर खा रहा है। इस दुर्गन्ध से कुम्भकरण को घबराहट हो रही थी।

परन्तु यह सब माया थी। विभेक ने अपने शीशे में देखा तो उसको पता चल गया कि कुम्भकरण राम के दल को नष्ट करने के उपाय सोच रहा है। उसमें इनको बाधा डालनी थी। अत हनुमान तो मरा कुत्ता बन गये और अगद कौआ बनकर उसको नोचने लगे। इस प्रकार कुम्भकरण की समाधि टूट गई और कुम्भकरण को अस्त्र के महत्व का लाभ न मिल सका।

परन्तु इससे कुम्भकरण निराश नही हुआ। दूसरे दिन प्रात काल कुम्भकरण अपनी मोक्खशक्ति को लेकर शत्रुदल पर टूट पडा। लक्ष्मण ने सामना किया तो मोक्खशक्ति झट से उसके शरीर मे घुस गई और समुद्रजा-नन्दन लक्ष्मण का रुधिर चूसने लगी। लक्ष्मण बेहोश होकर गिर पडे और राम का बना-बनाया दुर्ग ढह गया। बन्दरो की सेना मे निराशा

छा गई।

परन्तु विभेक ने फिर गई आशा को पुनर्जीवित करने का उपाय निकाल लिया। उसने हनुमान को 'सर्बय' पर्वत पर भेजा कि लक्ष्मण को जिलाने के लिए अमर बूटी ले आओ, परन्तु शर्त यह थी कि सूर्य निकलने से पहले औषध आ जाय। सूर्य निकलते ही बूटी का प्रभाव नष्ट हो जायगा।

हनुमान वायु वेग से आकाश मे उड गये। यकायक उनके श्वेत अग पर लाली छा गई। उनको पता चला कि सूर्योदय होनेवाला ही है और सूर्य देव अपने रथ पर चढ़े आ रहे हैं। दिन निकलते ही सब आशाओ पर पानी फिर जायगा। वह सूर्य के रथ को रोकने के लिए आगे बढे, परन्तु सूर्य के ताप से झुलस गये। क्षण-भर मे ही सूर्य को यह भेद मालूम हो गया। वह पछताने लगे कि मैंने राम के दूत को क्षति पहुंचा दी। सूर्य ने हनुमान के शरीर को स्वस्थ कर दिया। हनुमान ने प्रार्थना की कि "महाराज, थोड़ी देर अपनी गति को रोक दीजिये। परतु मानवो दु.ख या घृणा सृष्टि के नियम को रोक नही सकती। परन्तु सूर्य ने इतना मान लिया कि मै चलता तो रहूंगा, परन्तु बादलो की आड मे, जिससे ससार को दिन का पता ही न लगे।

हनुमान सन्तुष्ट होकर आगे बढे और शीघ्र सर्बय पर्वत पर पहुंचे। वहा वह बूटी को आवाज देने लगे। शीघ्र ही उत्तर आया 'मैं यह हूं।' जब हनुमान नीचे उतरे तो ऊपर से आवाज आई 'मैं यहा हूं।' इस प्रकार हनुमान हैरान हो गये। पता न चला कि बूटी कहा है। कभी नीचे से आवाज आती, तो कभी ऊपर से। यह देख हनुमान ने अपना शरीर

इतना बढाया कि सारा पर्वत उन्होने अपनी पूछ मे लपेट लिया। अब जिधर से आवाज आती उधर से ही बूटी को वे उखाड़ लेते। इस प्रकार अन्त मे बूटी मिल गई। परन्तु अभी एक कसर और रह गई थी। पांच नदियों का जल, जो अयोध्या मे भरत के अधिकार मे था, लाना था। हनुमान हारना तो जानते ही न थे। तुरन्त अयोध्या को दौड गये और वह जल भी ले आये। बूटी आई। लक्ष्मण, राम और उनकी सेना में हर्ष का पारावार न रहा।

वन्दरों की हर्ष-ध्वनि कुंभकरण के कानो मे पडी तो वह वदला लेने के लिए और सुदृढ हो गया। अब उसने निश्चय कर लिया कि सबको मार ही डालूगा। न कोई बचेगा न उपाय कर सकेगा। अत: उसने अपना शरीर ब्रह्मा के बराबर बढा लिया और पहाड की जिस नदी से सेना पीने का पानी लेती थी उसे रोक दिया।

सात दिन तक वह उसे रोके रहा। पानी की बूद न रही। वन्दर प्यास के मारे मरने लगे। विभेक जानता था कि कुंभकरण की ही यह करतूत है। परन्तु उसे पता न था कि वह है कहा? स्थान का पता उसकी फूलदासियो को ही था। विभेक की सूचना पर हनुमान चील बनकर बाग मे उड गये और एक फूलदासी को मार डाला और उसका रूप धारण कर लिया। अन्य पुष्प दासियों से मिलकर वह वहां पहुंचे जहा कुंभकरण पानी रोके पड़ा था। वहा पहुचकर हनुमान अपने असली रूप में आ गये और कुंभकरण को ऐसी लात मारी कि वह एकदम खड़ा हो गया। पानी वहने लगा और मृत्यु टल गई। युद्ध मे कुंभकरण हनुमान का सामना न कर

सका और भाग खड़ा हुआ ।

दूसरे दिन उसने फिर अपने अस्त्रों से बन्दरों की सेना पर आक्रमण किया । आज राम ने उसका सामना किया और नारायण के ब्रह्मास्त्र ने राक्षस का रुधिर चूसना आरभ किया और अत में वह मर गया । मरते समय कुंभकरण ने देखा कि साक्षात नारायण चारों हाथों में शख, चक्र, गदा और त्रिशूल लिये खडे हैं और उन्होंने पश्चात्ताप-शील राक्षस के लिए स्वर्ग का द्वार खोल दिया है ।

: २९ :

लक्ष्मण और इन्द्रजित का युद्ध

कुंभकरण की मृत्यु के पश्चात युद्ध का भार दशकठ के वीरपुत्र इन्द्रजित को सौंपा गया । यह मण्डो का पुत्र था । इसका पहला नाम रणवत्रा था । उसके पास तीन महा अस्त्र थे । ईश्वर से उसे ब्रह्मपाश मिला था, ब्रह्मा से नागपाश और विष्णु से विष्णुयन । इन तीन महाअस्त्रों के वल से इसने देवो के देव इन्द्र को भी हराकर उसे अयशी वना दिया था और तव से लोग इसे इन्द्रजित कहने लगे थे । इसका रथ सिह चलाते थे । राम-सेना को अव ऐसे महावली से पाला पडा ।

लक्ष्मण उसके साथ लडने आगे वडे । यह देख इन्द्रजित हँसा ।

"अरे, सिह से हिरण लड़ने आ रहा है ! अरे भाई ! तुम राम को क्यो नही आगे करते ?"

परन्तु राम के सामने तो इन्द्रजित की वही दशा थी, जो सूर्य के समक्ष जुगनू की। क्या वह राम का सामना कर सकेगा ? परन्तु इन्द्रजित राम के साथ लडने आ ही गया। एक वार तो उसके वाण ने चारो ओर मौत का शोर मचा दिया। जैसे आधी मे पीले पत्ते गिर जाते हैं उसी प्रकार इन्द्रजित के तीरो के सामने लडते हुए वन्दर एक-एक करके गिरने लगे। यह देख लक्ष्मण आगे वढे और उन्होने चढते हुए तूफान मे कुछ रोक-थाम की। दोनो योद्धाओ मे लडाई होती रही। उनके तीर कभी अग्नि और कभी पानी वरसाते रहे। लडते-लडते वे दोनो थक गये। विजय किसीको भी न मिली।

अपने सारे जीवन मे इन्द्रजित के लिए यह पहला अवसर था जव वह विजयी होकर न लौटा हो। उसने घर आकर निश्चय किया कि उसे कुम्भनीय यज्ञ करना चाहिए। तभी उसके तीरो मे जो अभिगुप्त शक्तिया हैं वे जाग्रत हो सकेगी। अत वह आकाश-गिरि पर्वत को चला गया और वहा यज्ञ करने लगा।

परन्तु एक कठिनाई थी। इन्द्रजित को लका से अनुपस्थित जानकर वन्दर लका पर चढाई कर सकते थे। अतः दशकठ ने खर के पुत्र मकरकठ को वुलाया और उसे आज्ञा दी कि वह शत्रु से लडकर उसकी प्रगति को रोकता रहे। परन्तु मकरकठ को लडने भेजने का अर्थ था उसे मौत के मुह मे दे देना। वह तो पिछले जन्म मे दर्वी था। और उसके लिए भविष्यवाणी थी कि वह राम के हाथ से मारा जायगा। राक्षस वहुत वीरता से लडा और एक वार तो राम के दल में उसने खलवली मचा दी। अनेक रूप धारण करके उसने सारा

आकाश घेर लिया और राम के दल पर आग वरसाता रहा। परन्तु राम के ब्रह्मास्त्र ने उसे भी मार गिराया और वह जीवन के झंझट तथा अभिशाप दोनों से मुक्त हो गया।

अब राम के दल में यह चर्चा होने लगी कि इन्द्रजित कहां है? वह क्यों नही आता? विभेक जानता था कि वह कहां है और क्या कर रहा है? उसने राम को बता दिया कि इन्द्रजित के यज्ञ मे कैसे बाधा डाली जाय। जिस वृक्ष के नीचे इन्द्रजित यज्ञ कर रहा है, उसे यदि कोई रीछ जाकर तोड दे तो यज्ञ भग हो जाय। जम्बूवान् ने यह काम अपने ऊपर लिया और रीछ का रूप धारण करके निर्दिष्ट स्थान पर पहुंच गया।

उस समय इन्द्रजित ध्यान मे मग्न था। उसके मंत्रों के प्रभाव से ससार-भर के सर्प इकट्ठे हो गये और वे नागपाश को घोर विपैला वनाने के लिए अपना-अपना विप प्रदान करने लगे। इतने में वृक्ष टूटकर आ गिरा। सर्पो ने समझा कि गरुड़ आ गया। इसलिए वे जल्दी से भूमि मे समा गये। जम्बुवान झट आकाश मे उड़कर अपने स्थान पर वापस आ गया। इन्द्रजित को इतना समय न मिला कि वह जम्बुवान का मार्ग रोक सकता।

इस विघ्न के होने पर भी इन्द्रजित अपने शक्ति प्रसुप्त वाणों को लेकर युद्ध के लिए चल पडा।

जब वह मार्ग में आ रहा था तो उसके साथ विरुणमुख की छोटी-सी सेना भी मिल गई। इस प्रकार अपार शक्ति से सम्पन्न होकर उसने राम की सेना पर चढ़ाई कर दी।

परन्तु लक्ष्मण के सामने राक्षस इस प्रकार मरने लगे

जैसे शेर के सामने हिरण मरते हैं। घोर युद्ध हुआ। किसी की जीत निश्चित न थी। उस समय इन्द्रजित ने विरुणमुख को परामर्श दिया कि वह इन्द्रजित का रूप धारण करके उसकी सेना को लेकर लडाई करता रहे और वह आकाश मे जाकर नागपाश को छोड दे। लक्ष्मण को इसका पता न लग पाये कि इन्द्रजित कहा है। शीघ्र ही इस सूचना के अनुसार विरुण-मुख की सेना राम-सेना की ओर बढी। असली इन्द्रजित को अवसर मिल गया और उसने आकाश मे से जाकर वहा से नागपाश छोड दी। तुरन्त ही नागपाश मे से सैकडो सर्प निकल पडे और राम की वानर-सेना पर विष छोडने लगे। सापो की लपेट मे आकर वानर और लक्ष्मण दोनो बेहोश हो गये। इन्द्रजित विजय दुदुभी बजाता हुआ घर लौट आया। बन्दर और लक्ष्मण वही रणक्षेत्र मे पडे रहे।

अब राम उस स्थल पर पहुचे जहा लक्ष्मण और उनके प्राणशून्य बन्दर पडे हुए थे। विभेक की प्रेरणा पर राम ने अपना बलैवत् तीर आकाश मे छोडा। फलस्वरूप गरुड आ गये और सर्पो का सफाया करने लगे। लक्ष्मण और उसके साथी बन्दर ऐसे उठ खड़े हुए मानो वह सो रहे थे।

इन्द्रजित को बडा आश्चर्य हुआ। यह कैसे शत्रु हैं जो मृत्यु के द्वार से भी लौट आते हैं। अच्छा, अब मैं इनको मौत के जबडो मे ही रख दूगा। वहा से तो आज तक कोई नही लौटा है। यह कह वह समुद्र के तट पर गया और ईश्वर की आराधना करने लगा कि "भगवन् मेरे अस्त्र की प्रसुप्त शक्तियो को जागृत कर दो।"

परन्तु उसकी आराधना निष्फल हो गई, क्योकि हनुमान

ने इसी बीच में कंपन को मार डाला और दशकंठ ने कम्पन की मृत्यु की सूचना इन्द्रजित को दे दी। यज्ञ के बीच मे यदि कोई अशुभ सूचना मिल जाय तो यज्ञ खडित हो जाता है। इस प्रकार इन्द्रजित का यज्ञ भी खडित हो गया।

अव एक ही उपाय शेष था। वह यह कि एक काली गाय की वलि दी जाय। इन्द्रजित ने ऐसा ही किया और पाश की सुप्त शक्तियां जाग उठी।

इस प्रकार अजेय ब्रह्मास्त्र को लेकर इन्द्रजित ने शत्रु पर आक्रमण किया। माया के बल से इन्द्रजित इन्द्र वन गया और समस्त देवगण अपने प्रकाशमय स्वरूपों के साथ उसके चारो ओर इकट्ठे हो गये। रणक्षेत्र क्षण-भर में स्वर्ग का दृश्य दिखाने लगा। लक्ष्मण जो वानर-सेना के सेनाध्यक्ष का कार्य कर रहे थे, क्षणभर के लिए भूल गये कि वह रणक्षेत्र में हैं और स्वर्ग में नही हैं।

इन्द्रजित ने भ्रम-ग्रस्त लक्ष्मण पर अपना ब्रह्मास्त्र छोड दिया और समस्त सेना धराशायी हो गई। परन्तु हनुमान अभी जीवित थे। उन्होने देख लिया था कि अस्त्र किसने छोड़ा है। उसने आकाश में छलांग मारी और नकली इन्द्र के नकली ऐरावत की गर्दन तोड दी। परन्तु इन्द्रजित ने हनुमान को ऐसा घूसा मारा कि वह भूमि पर गिर पड़े और इन्द्रजित अपनी विजय का डका वजाता हुआ घर वापस आ गया।

राम को खवर लगी तो वह झट घटना-स्थल पर पहुचे। वहा सवोंको मरा हुआ देखते ही वह पछाड़ खाकर ऐसे गिर पड़े जैसे कोई वृक्ष जड़ से उखड़कर गिर पड़ता है।

: ३० :

इन्द्रजित का अन्त

राम अपने प्यारे भाई लक्ष्मण की लाश के पास मूर्च्छित पडे थे और उनके चारो ओर बन्दरो की लाशो के ढेर लगे थे। वही रणक्षेत्र, जो अबतक उनके विलक्षण पराक्रमो की क्रीडास्थली था, आज उन्हीके शवो से श्मशान बना हुआ था।

लका के राजा के पास जब विजय की यह सूचना पहुंची तो उसकी बीसो आखे हर्ष के मारे प्रकाशित हो उठी। उसने सीता के पास सदेश भेजा। सीता एकान्त मे बैठी हुई अपने पति की विजय के लिए अपने इष्ट देवो से प्रार्थना कर रही थी। राक्षस के मुख से जो अनिष्ट समाचार सुने तो सीता के ऊपर वज्र-सा गिरा। "तुम्हारे पति का अन्त हो चुका। बन्दर-सेना नष्ट हो चुकी। अब क्या शेष रहा ? यह बात तो निश्चित रूप से ठीक है। पर तुम चाहो तो यह अपनी आख से देख लो।"

त्रिजटा को साथ लेकर सीता पुष्पक विमान पर चढकर घटना-स्थली पर पहुंची। ज्योही उसकी दृष्टि उस भयानक दृश्य पर पडी उसकी अन्तिम आशा का भी खून हो गया। "हाय ! राम तो मरे पडे है। अब प्यारे शब्द कहकर कौन मुझे ढाढस देगा ? मेरे आसुओ का पोछनेवाला अब कोई नही है। इसमे सशय ही क्या है ?" अयोध्या-नरेश राम की लाश रणक्षेत्र मे पड़ी थी। सीता की आखो से आसुओ की

धारा बहने लगी और उसका हृदय टुकडे-टुकड़े हो गया।

इस समय त्रिजटा ने कुछ आशा दिलाई। ध्यान से देखो तो सही, राम मरे पडे हैं या मूर्च्छित है। इसकी सबसे बड़ी पहचान तो पुष्पक विमान ही था। क्योकि पुष्पक विमान किसी विधवा को लेकर आकाश मे उड नही सकता। यदि राम मर गये होते तो तुम विधवा हो गई होती और विधवा को लेकर पुष्पक उड़ता कैसे ? सबों ने इस बात की एक बार परीक्षा की थी। अब फिर इसकी जाच हो सकती है। सीता पुष्पक मे बैठ गई और विमान तुरन्त उसको लेकर आकाश मे चढ गया और थोडी देर मे सीता को उसकी कुटिया मे पहुचा दिया। इससे उसने जान लिया कि राम मरे नही, मूर्च्छित है। किसी-न-किसी दिन विजयी होकर उसका दुःख दूर करेंगे।

इस समय विभीषण सेना को रसद पहुचाने के लिए किसी दूसरे स्थान को गये थे। वह लौटे तो उन्होने सेना की यह दुर्गति देखी। परन्तु इससे वह निराश नहीं हुए। वह जानते थे कि हनुमान को तो ईश्वर की ओर से अमर होने का वरदान है। वह कैसे मर सकते है। उन्होंने एक मत्र पढकर हनुमान के शरीर की ओर एक फूक मारी। हनुमान ने आखे खोल दी और मन्द दृष्टि से इधर-उधर देखने लगे। तुरन्त ही उनको परिस्थिति का पता लग गया और वह उठ खड़े हुए।

रात का समय था। सतप्त भूमि को ओस की बूदे शीतल कर रही थीं। पडी हुई लाशो पर इन बूदो का ऐसा प्रभाव हुआ मानो अमृत की वर्षा हो रही हो। एक-एक करके राम

के सैनिक उठने लगे । मानो ओस की बूदों मे दैवी शक्ति आ गई । परन्तु अभी लक्ष्मण और अन्य सैनिक, जो ब्रह्मपाश से आहत हुए थे, उसी प्रकार पडे हुए थे । ब्रह्मास्त्र से हुए व्रणों के ठीक होने का एक ही इलाज था कि पूर्व विदेह देश के आवुद्ध पर्वत की वूटियो का रस निकालकर इन घावो पर लगाया जाय । इन वूटियो को केवल जम्बुवान् जानता था, क्योंकि जब वह ईश्वर की सेवा किया करता था, उस समय उसका इन बूटियो से परिचय हुआ था । परन्तु बूटी के ऊपर एक चक्र था, जो घूमता रहता था । यदि कोई उस वूटी को लेने का यत्न करता तो चक्र उसको मार देता था । केवल हनुमान ही इसको ला सकते थे । हनुमान झट दौडे गये और पर्वत पर जा पहुचे ।

थोडी ही देर मे क्या देखते हैं कि चाद छिप गया और आकाश मे अधेरा हो गया । लोगो ने देखा कि पूरा पहाड-का-पहाड उठाये हनुमान चले आ रहे हैं । अब एक और कठिनाई उपस्थित हुई कि यह पहाड रक्खा कहा जाय ? लका तो एक जगमद्वीप था, उसपर यह पवित्र पर्वत टिकाया नही जा सकता था । अत इसे उत्तर दिशा मे टिकाया गया । इसकी वूटियो से जो सुगन्ध उठनी आरभ हुई और रण-क्षेत्र पर पडी लाशो के ऊपर वहने लगी तो वानरो को ब्रह्मास्त्र द्वारा की हुई मूर्छा हटने लगी और शीघ्र ही सारी मृत सेना जीवित होकर उठ खडी हुई । लक्ष्मण और उनके सब साथी, जिनको ब्रह्मास्त्र व्याप्त हुआ था, जी उठे ।

जब यहा भी उसे असफलता मिली तो इन्द्रजित ने विचार किया कि राम को लका से भगाने का कोई और

उपाय सोचना चाहिए। राम ने लंका पर चढ़ाई तो सीता के लिए ही की थी। यदि सीता का ही अन्त कर दिया जाय तो युद्ध का भी अन्त हो जायगा। परन्तु दशकंठ यह नहीं चाहता था कि सीता मारी जाय। इसलिए एक नकली सीता बनाई गई। शुक्रसर ने अपने कर्त्तव्य का पालन नही किया था। अत: उसे प्राणदड का हुक्म हो चुका था। इन्द्रजित ने एक नई तरकीब सोची। उसके सुझाव पर दशकंठ ने शुक्रसर को आदेश दिया कि वह सीता का रूप धारण करके इन्द्रजित के साथ उसके रथ में बैठ जाय। इस प्रकार नकली सीता को लेकर इन्द्रजित रणक्षेत्र में पहुंचा और लक्ष्मण का और उसका सामना हुआ।

परन्तु लक्ष्मण का तीर तो उसके धनुष में ही अटका रह गया। सीता के ऊपर जो लक्ष्मण की दृष्टि पडी और उनकी दुखित आकृति जो देखी तो लक्ष्मण के तो होश उड़ गये। इन्द्रजित ने जब उन्हें युद्ध के लिए ललकारा तब उन्हें होश आया। इन्द्रजित ने कहा, "अरे लक्ष्मण, आगे आ और सीता को ले जा। भले आदमी अब तो लका का पिड छोड़!" लक्ष्मण ने सहर्ष इस बात को स्वीकार कर लिया। परन्तु इन्द्रजित तो स्वयं सीता को शत्रु के हवाले करके अपने यश को बट्टा नही लगाना चाहता था। अत. उसने झट से नकली सीता का सिर तलवार से काटकर लक्ष्मण की ओर फेंक दिया। यह देख लक्ष्मण सुन्न रह गया। अब इन्द्रजित ने एक और दहाड़ भरी—"अरे, अभी क्या है ? अभी तो मैं तुम्हारी राजधानी अयोध्या पर चढाई करूंगा और तुम्हारे समस्त देश को तहस-नहस कर दू गा।" इस प्रकार अपनी विजय पताका

फहराता हुआ वह अपने स्थान को लौट गया।

परन्तु यह विजय तो कल्पना-मात्र थी। विभेक जानता था कि यह तो शुक्रसर का सिर है। असली सीता तो जीवित हैं और वह दशकठ के बाग मे कैद है। विभेक को यह भी निश्चय था कि इन्द्रजित अयोध्या पर चढाई नही करेगा, क्योकि उसे तो कुम्भनीय यज्ञ करना है, जिससे उसके दिव्य अस्त्रो मे बल आ जाय, और उसके और उसकी सेना के कभी पराजित हो सकने का प्रसग ही न उठ सके।

विभेक लक्ष्मण को उस स्थान पर ले गये जहा इन्द्रजित अपनेको सुरक्षित समझकर यज्ञ कर रहा था। एकाएक विघ्न पडता देखकर राक्षस इन्द्रजित उठ खडा हुआ और विघ्नकारियो को इधर-उधर खोजने लगा। परन्तु आज विजय देवी तो उसके अनुकूल न थी। उसके जी मे पीडा होने लगी कि यदि आज उसकी मृत्यु हो गई तो उसके मा-बाप को कौन सान्त्वना देगा। उसने चाहा कि एक वार उनके दर्शन तो कर आये। अत उसने माया से अन्धकार उत्पन्न कर दिया और अपने पिता दशकठ तथा अपनी माता मण्डो के दर्शनार्थ चल पडा।

इस समय लक्ष्मण को अपनी विजय की इतनी आशा हो गई कि उन्होने इन्द्रजित् का सिर काटने का पक्का इरादा कर लिया था। परन्तु ब्रह्मा की ओर से इन्द्रजित को एक वरदान था कि जिस दिन भूमि पर इन्द्रजित का सिर गिरेगा उसी दिन प्रलय की आग प्रज्वलित हो जायगी और समस्त संसार उसमे जल जायगा। इसलिए अगद स्वर्गलोक को उड गये और वहा से ब्रह्मा का एक पात्र उठा लाये, जिससे इन्द्र-

जित् का सिर भूमि पर न गिरने पावे। ज्योंही वह लौटे लक्ष्मण ने अपना ब्रह्मास्त्र छोड दिया और इन्द्रजित का सिर कटकर ब्रह्मा के पात्र में गिर पडा। अब राम ने एक ऐसा बाण छोडा कि उसमे से अग्नि उत्पन्न हुई और उसने इन्द्रजित् के सिर को जलाकर राख कर दिया। जगत् भस्म होने से बच गया। इन्द्रजित का सिर-रहित धड रणक्षेत्र मे गिर पडा और वानर-सेना के हृदय मे विजय की नई उमगे उत्पन्न हो गई।

: ३१ :

युद्ध-भूमि में दशकंठ और उसके मित्र

जब दशकंठ ने अपने पुत्र की मृत्यु का हाल सुना तो उसके हृदय मे तीर-सा चुभ गया। 'मेरी यह कैसी दुर्गति हुई! लेकिन इस सबका मूल कारण तो सीता ही है! क्या यह उचित न होगा कि उसका ही अन्त कर दिया जाय। क्योकि उसीने मेरे पुत्र की मृत्यु कराई है।' यह सोच वह सीता की कुटिया की ओर लपका, वह सीता को खत्म करने ही वाला था कि पौवनासुर ने उसे रोक दिया।

"अरे यह क्या करते हो? ऐसा करना तो नामर्दी है! क्या इससे तुम्हारा पुत्र जी उठेगा? अगर उसका बदला लेना है तो राम से जाकर लडो।"

इस तरह दशकंठ लड़ाई के मैदान मे उतरा। उसके साथ उसके दस सेनाध्यक्ष और दस पुत्र भी थे, जिन्होंने पहले वायु, अग्नि, सूर्य और इन्द्र को पराजित कर दिया था। परन्तु

वानर-सेना मे भी वायु-पुत्र हनुमान, अग्नि-पुत्र नीलनन्द, सूर्य-पुत्र सुग्रीव और इन्द्र का पौत्र अगद विद्यमान थे। यह मजे की बात थी कि जिन्होने युद्ध मे देवो को हरा दिया था, उनकी मृत्यु उन देवो की सन्तान के ही हाथो हुई।

दशकठ दस भुजाओ से आक्रमण करता था और दस भुजाओ से दूसरो के आक्रमण को रोकता था। फिर भी उस की विजय न हुई !

वह लौट आया। न तो विजयी होकर, न हारकर। अब उसने अपने मित्र पगताल के राजा मूलबलम को बुलाया। मूलबलम अपने बडे भाई सहस्सतेज के साथ आया। सहस्सतेज एक राक्षस था, जिसको ईश्वर ने वरदान मे एक सहस्र सिर और दो सहस्र भुजाए दी थी। उसका बल इतना अधिक था कि कोई भी शत्रु उसके सम्मुख टिक ही नही सकता था। इसके अतिरिक्त उसके पास एक ऐसी गदा थी, जिसके ऊपरी नुकीले सिरे से मृत्यु अवश्यम्भावी थी और निचले सिरे से मृत पुरुष जी उठता था।

बडे उत्साह और अभिमान से दोनो भाई रणस्थली मे आये। सहस्सतेज को देखते ही बन्दर ऐसे भागे जैसे भेडिये के सामने से भेडे। परन्तु लक्ष्मण के तेज तीरो ने मूलबलम को ढेर कर दिया और हनुमान की बुद्धिमत्ता ने सहस्सतेज की प्रगति रोक दी। पवन-पुत्र ने चाहा कि उसका गदा छीन ले। अत एक छोटे बन्दर का रूप धारण करके वह उसके रथ के आगे आगये। क्रोध के जोश मे राक्षस ने अपना रथ रोका और बन्दर को उठा लिया। बन्दर ने कहा, "मैं बाली का सेवक हू और अपने मालिक का बदला लेने आया हू।"

राक्षस ने विश्वास करके उसे अपना मित्र बना लिया। उसकी खुशामदभरी मीठी-मीठी बातों में आकर उसने अपनी गदा दे दी और कहा कि जाकर इससे अपने स्वामी का बदला लो। गदा को पाते ही हनुमान ने अपना विकराल रूप धारण कर लिया और अपनी लम्बी पूछ से राक्षस को लपेटकर उसका हजार मुखवाला सिर काटकर राम के सामने रख दिया।

सहस्सतेज की मृत्यु के उपरान्त मकरकंठ का भाई सैग्-आदित्य सामने आया। इस राक्षस के पास एक मायावी शीशा था। इसमें जिस वस्तु की छाया पड़ती, वही भस्म हो जाती थी। परन्तु अच्छी बात यह थी कि यह शीशा ब्रह्मा के पास रहता था। अंगद सैग्-आदित्य के सेनाध्यक्ष का रूप धारण करके ब्रह्मा के पास गये और उस शीशे को ले आये। इस विषैले अस्त्र से वंचित होकर यह राक्षस भी शीघ्र ही राम के हाथों मारा गया।

इस प्रकार दशकंठ के सभी मित्र एक-एक करके समाप्त होते गये। अब कौन बचा था, जिसकी ओर उसकी दृष्टि जाती ? अथवा जिससे उसे सहायता की आशा हो सकती ? अचानक उसे याद आई कि चक्रवाल का राजा सतलुंग् और त्रिसिर का बेटा त्रिमेघ तो अभी शेष है। दशकंठ ने इन राक्षस राजाओं की सहायता मांगी और वे राजी हो गये।

सतलुंग् बहुत बड़ी सेना के साथ लंका को चल पड़ा। मार्ग में ही त्रिमेघ की सेना से उसकी भेंट हुई।

ये दोनों सेनाए अपने संयुक्त बल के साथ राम और उनकी सेना को पराजित करने के लिए आई। परन्तु वस्तुतः वे तो मृत्यु के मुख में ही जा रही थी। राम ने तीर मारा

तो सतलु ग् तो मर गया और त्रिमेघ अपनी जान बचाने के लिए चक्रवाल पर्वत के रेतीले मैदान मे जा छिपा । हनुमान ने वहा जाकर उसका पीछा किया और वह मृत्यु को प्राप्त हुआ ।

अब मित्र हीन होकर दशकंठ ने अपनी शक्ति का ही आसरा लिया । उसको डर ही किसका था ? उसमे तो ऐसी शक्ति थी, जो अपने मास को हीरा बनाले । और अपनी उगलियो मे मृत्यु-देव की शक्ति भर ले, जैसाकि वह नन्दक के रूप मे ईश्वर की सेवा करने के समय किया करता था । परन्तु ऐसा करने के लिए शर्त यह थी कि उसका मन सात दिन तक प्रसुप्त सागर के समान शात रहे । एक क्षण भी यदि उसे क्रोध आ जाय और मन मे अशान्ति उत्पन्न हो जाय तो यह वरदान निष्फल हो जाता । अत वह नीलकाल पर्वत की खोह मे गया और घोर तप के साथ उसने यज्ञ आरम्भ कर दिया ।

परन्तु दशकठ हनुमान की शक्ति का अनुमान न लगा पाया था । यह तो उसके पीछे पडा ही रहा । बिभेक के बताने पर हनुमान और अगद तथा नीलनन्द उस स्थान पर जा पहुंचे जहा दशकठ तपस्या कर रहा था । परन्तु देखा कि उसने अपनी माया से खोह का द्वार बन्द कर रक्खा है । परन्तु यह द्वार भी खुल सकता था, यदि किसी स्त्री के पैर का अशुद्ध धोवन उसपर छिडका जा सके । हनुमान अपनी राक्षसी स्त्री बेन्चकाय् के पास गया और उसके पैर धोने का पानी ले आया । उसके छिडकते ही खोह का द्वार खुल गया । तीनो बन्दर उस खोह मे घुस गये और कभी काटकर, कभी नोचकर दशकठ के क्रोध को भडकाने लगे । परन्तु राक्षसो का

अधिपति विचलित नही हुआ और स्थिर बैठा रहा।

असफल होकर हनुमान ने एक नया उपाय सोचा। उसने खोह छोड दी और वहा जा पहुंचा जहां रानी मण्डो सो रही थी। उसके मुह पर मोती के समान मुस्कराहट झलक रही थी।

माया से मूर्छित करके हनुमान ने उसे उठा लिया और दशकठ के समक्ष ले आया।

अरे, लका की रानी एक वानर के हाथ में? उसकी प्राणप्यारी एक पशु के चगुल में? क्रोध के मारे दशकठ ने हनुमान पर आक्रमण कर दिया। हनुमान ने तुरन्त ही रानी को छोड़ दिया और हर्षपूर्वक अपने पड़ाव पर लौट आये। क्रोध के आते ही दशकठ का मन क्षुब्ध हो गया और साथ ही उसका वह वर भी जाता रहा, जिसके भरोसे वह अपनेको मृत्यु का साक्षात् रूप बनाना चाहता था।

हारकर दशकठ ने अज्टाग राजा सद्धासुर और दूषण के पुत्र विरुण्चम्वग् की सहायता ली। दोनों राक्षस तुरन्त ही उसको सहायता को आ गये। सद्धासुर को ऐसा वर था कि वह समस्त देव-लोक के शस्त्रो को पा सकता था और विरुण्-चम्वग् को ऐसा वर था कि वह और उसका घोड़ा दोनों अदृष्ट हो जाते थे।

हनुमान ने सद्धासुर का सामना किया और उससे देवास्त्रो को छीनने की एक तरकीव निकाली। उसने बन्दरो से कहा कि वादलो मे छिप जाओ। जव सद्धासुर की प्रार्थना पर देव-लोक से देव अपने अस्त्र डालने लगे तो उनको बीच में ही लपक लेना। इसके पश्चात् एक भयानक बन्दर का

रूप धारण करके उसने सद्धासुर को ललकारा कि यदि तुझमें कोई मायावी शक्ति है तो उसका परिचय दे अब राक्षस ने देवताओं से अस्त्र मागे परन्तु वह उसतक न पहुच सके। वन्दरों ने उनको बीच मे ही लपककर ले लिया। अब तो उसकी अपनी मायावी शक्ति पर भरोसा न रहा और उसने अपने ही शारीरिक बल से हनुमान पर आक्रमण किया। हनुमान ने उसको सहज ही मे मार डाला और उसका सिर काटकर राम के हवाले कर दिया।

सद्धासुर के गिरते ही विरुण्चम्वग् क्रोध करके वानरों पर आ टूटा। अपने अदृष्ट घोडे पर सवार होकर वह वन्दरों को मौत के घाट उतारने लगा। राम की समझ मे नही आया कि इस अदृष्ट शत्रु से कैसे लडा जाय। अन्त में उन्होने अपना मौत का बुझा हुआ तीर छोड ही तो दिया। इससे राक्षस के सभी साथी मारे गये और उसका अदृष्ट घोडा भी नष्ट हो गया। यह देख अकेला राक्षस बड़ा भयभीत हुआ और शत्रु का सामना न कर सका। उसने अपना एक रुमाल निकाला और माया के जोर से उस रुमाल से अपनी ही एक नकली आकृति बनाली।

अब असली विरुण्चम्वग् तो आकाश पर्वत पर भाग गया और उसकी नकली आकृति लडती रही। आकाश पर्वत पर उसे एक वानरिन नाम की अप्सरा मिली, जो पतित हो गई थी। उसने उसे समझाया कि वह समुद्र फेन मे जा छिपे। परन्तु वहा भी वह हनुमान के चगुल से न बच सका।

हनुमान आकाशपर्वत पर जा पहुचे और वानरिन से

भेंट की। यह कई युगों से बड़ी उत्सुकता से हनुमान की बाट जोह रही थी। जब वह ईश्वर के यहां उनकी सेवा कार्य में लगी हुई थी तब एक बार अपने किसी मित्र से बातचीत करते-करते वह ईश्वर की आज्ञा का पालन करना भूल गई। ईश्वर का कोप हुआ और उन्होंने उसे शाप दिया कि तू यहां से पृथ्वी पर चली जा। तेरा उद्धार तब होगा जब तू विरुण्चम्वंग् को खोजने में हनुमान की सहायता करेगी। हनुमान ने एक सुन्दर युवक का रूप धारण कर लिया और उनकी आकृति कामदेव से भी अधिक मनोहर हो गई। वह उस अप्सरा के पास गये और अपना मुंह खोलकर उसमें सूर्य, चांद, नक्षत्र चमकते दिखाये। उसे विश्वास हो गया कि यही वस्तुतः हनुमान हैं। वह उनकी बन गई और इस प्रकार उसका शाप छूट गया। इस अप्सरा के बताये मार्ग पर चलकर हनुमान वहां पहुचे जहां विरुण्चम्वग् समुद्र के फेन मे छिपा पड़ा था। हनुमान पहुचे ही थे कि उसने अपनी माया से समुद्र में एक छेद कर दिया और उसमें होकर समुद्र की तलहटी मे भाग गया। परन्तु हनुमान ने अपनी पूंछ लम्बी बढ़ाई और उसे समुद्र की तलहटी से घसीटकर निकाल लाये। इस प्रकार विरुण्चम्वग् की मृत्यु हो गई।

: ३२ :

मलिबग्गब्रह्मा का न्याय

सद्धासुर और विरुण्चम्वंग् की मृत्यु ने दशकठ की बदला लेने की इच्छा को और भी तीव्र कर दिया। शत्रु की अजेयता

के कारण उसको अपने अस्त्रों मे श्रद्धा नही रही। अब वह कोई ऐसा उपाय सोचने लगा, जिससे वह राम के अस्तित्व को ससार से मिटा दे।

उसे अपने पितामह ब्रह्मा मालीवराज की याद आई, जो देवो, गन्धर्वो और समस्त दिव्य योनियो के अध्यक्ष थे। वह ऐसे ब्रह्मा थे कि उनकी कोई बात झूठी नही निकलती थी। यदि वह किसी प्रकार राम को मृत्यु का अभिशाप देदे तो लका सदा के लिए राम के पजे से मुक्त हो जाती और दशकठ सुख की नीद सो सकता।

इस काम को पूरा करने के लिए दशकठ ने दो राक्षसो नन्यविक और वायुवेग को स्वर्ग मे भेजा और उनके द्वारा ब्रह्मा से विनय की कि "महाराज, आप लका आइये और मेरा और राम का न्याय कर जाइये, राम ने अन्यायपूर्वक मेरे ऊपर चढाई कर दी है और वह लका को घेरे पडा है।"

मालीवराज राम के पितामह महाराजा अजपाल का मित्र था। उसने तुरत न्यायाधीश बनने की स्वीकृति दे दी। वह देवी-देवताओ को साथ लेकर स्वर्ग से लका आया, परन्तु यदि वह नगर मे जाता तो राम को सन्देह होता कि शायद वह दशकठ का पक्ष करे और यदि राम के पडाव मे उतरता तो दशकठ सोचता कि उसने राम का पक्ष लिया है। अत इन दोनो शकाओ को दूर करके वह रणक्षेत्र मे उतरा, क्योकि रणक्षेत्र तो किसी एक का न था।

दशकठ तुरन्त आगया और कहने लगा कि देखिये राम ने मेरे साथ बडा अन्याय किया है और लडाई के लिए उतारू हो गया है। उसकी धारणा थी कि पहले से ही शिकायत की

जाय तो ब्रह्मा राम से क्रुद्ध हो जायगे। परन्तु मालीवराज तो न्यायकारी थे। उन्होंने उचित समझा कि पहले सब देवी, देवताओं को इकट्‌ठा कर लिया जाय और उनके सामने राम को बुलाकर उनका पक्ष सुना जाय। तुरन्त ही रणक्षेत्र एक न्यायालय बन गया और देवों का दरवार लग गया। वहां मारकाट के स्थान में हर्षपूर्वक वार्तालाप होने लगा।

राम अपने साथियों और मित्रों के साथ वहां आये। मालीवराज ने जानना चाहा कि लड़ाई का सूत्रपात कैसे हुआ? दशकठ ने कहा, "महाराज, सुनिये, राम ने व्यर्थ ही एक औरत के पीछे यह टंटा बढ़ा रक्खा है और इतनी सेना लेकर मेरी राजधानी को घेरे पड़ा है। बात तो बहुत छोटी-सी है। मैंने एक स्त्री को जगल में अकेला देखा। उस बेचारी के साथ कोई न था। न उसका पति न पुत्र। मुझे उसपर दया आई और मैं उसे अपने नगर में ले आया, बात तो केवल इतनी-सी है।"

परन्तु राम ने सब बात ठीक-ठीक कह दी कि किस प्रकार दशकंठ सीता को चुराकर लाया और किस प्रकार उन्होंने चढाई की।

अव सीता बुलाई गई, उसके साथ बन्दर भी थे और राक्षस भी, जिससे किसीको ऐसा अवसर न मिले कि मार्ग में सीता को सिखाया जा सके। सीता की गवाही और देवों की साक्षी से सिद्ध हो गया कि राम का पक्ष सत्य है। दशकठ का मुंह बन्द हो गया, उसकी समझ मे नही आया कि क्या किया जाय। उसके पास एक ही बहाना था कि चूंकि उसने देवताओ को कई वार पराजित किया है, अतः वे उससे ईर्ष्या

रखते हैं और अनेक प्रकार से उसको सताने की वात सोचते रहते हैं।

परन्तु अब मालीवराज का विश्वास दशकंठ पर एकदम उठ गया और अन्तिम वात ने तो उसको स्पष्ट ही दशकठ के विरुद्ध कर दिया। उन्होंने आज्ञा दी कि दशकठ सीता को वापस दे दे और युद्ध समाप्त कर दिया जाय। परन्तु दशकंठ अड गया। अपनी इच्छा के सामने उसने सत्य और न्याय को त्याग दिया। उसने न्यायाधीश की वात को मानने से इन्कार कर दिया। अन्त में मालीवराज क्रुद्ध हो गये और यह निर्णय करके चले गए कि दशकठ राम के हाथ से मारा जाय। मालीवराज के साथी देवता भी देव-लोक को चले गये।

: ३३ ·

महास्त्र कपिलवद

मालीवराज के निर्णय को अपने विरुद्ध पाकर दशकठ ने सोचा कि महास्त्र कपिलवद को जागृत करना चाहिए। उसे ईश्वर की ओर से वरदान मिला था कि इसके जागृत होने पर वह मालीवराज को देवों-सहित भस्मीभूत कर सकेगा।

उसने साधु का भेस बना लिया और मेरुपर्वत की तलहटी मे आकर यज्ञ की अग्नि को प्रज्वलित करने लगा। उसने मिट्टी के देवो की मूर्तिया वनाईं और वेद मत्रों का पाठ आरभ किया। अग्नि में से ज्वाला उठने लगी और उसने एक-एक करके उन मूर्तियों को आग मे डालना आरंभ कर दिया।

जैसे-जैसे वे मूर्तियां अग्नि में पड़ती जाती वैसे-वैसे देवों में खलबली मचती जाती। देवों के राजा ने देखा कि दशकंठ ने तो उन सबको भस्म करने की तैयारी कर रखी है। देव तुरन्त ईश्वर के पास दौड़े गये और उनसे सहायता मांगी।

दयालु ईश्वर ने बाली को, जो दूसरा जन्म लेकर देव बन गया था, आज्ञा दी कि जाओ और मेरु पर्वत को आग में झोंक दो।

शान्ति पूर्वक यज्ञ करते हुए दशकंठ ने बाली को आते देखा। परन्तु बाली था देव! उसके सामने दशकंठ की क्या चलती। वह निराश होकर भाग निकला और लंका को भाग गया। जब दशकंठ ने देखा कि ईश्वर ने बाली को देव बना लिया है और वह राम का पक्ष लेते है, तो उसे बहुत बुरा लगा। परन्तु मण्डो ने उसे सान्त्वना दी और कहा कि शायद बिभेक के सुझाने पर हनुमान आया होगा और उसने बाली का रूप धारण कर लिया होगा। यह विभेक सब बलाओं की जड़ है। हर विपत्ति मे उसका हाथ है। अत. पहले उसको मारना चाहिए। दशकंठ ने इसपर विश्वास कर लिया।

दूसरे दिन प्रातःकाल दशकंठ अपने महास्त्र कपिलबद को लेकर विभेक को मारने चल दिया। जब वह रणक्षेत्र में पहुचा तो राम, लक्ष्मण और विभेक तीनो ने उसका सामना किया। कपिलबद झट से विभेक का रुधिर पी जाने के लिए लपका। परन्तु विभेक ने तो वेग से अपनेको बचा लिया और लक्ष्मण ने महास्त्र को वापस भेज दिया। लक्ष्मण का तीर लगने से कपिलबद का मार्ग तो तिरछा पड़ गया, परन्तु दशकंठ का तीर आकर लक्ष्मण के लगा और वह मूर्छित होकर गिर पड़े।

लक्ष्मण को गिरता देखकर राम क्रोध से भर गये। उन्होने आज राक्षसों के दल पर ऐसी बाण-वर्षा की जैसी इससे पहले कभी नही की गई थी। अब दशकंठ के सिवाय और कोई राक्षस जीता न बचा और दशकंठ के तरकश में एक भी तीर शेष नही रह गया था। तीरो की ऐसी भयानक वर्षा हुई कि उसके छक्के छूट गये और वह भागकर अपने महलो मे जा छिपा।

जब युद्ध की गति कुछ शांति हुई तो विभेक ने लक्ष्मण की जान बचाने का उपाय करना आरभ किया। कपिलवद से हुए घाव को ठीक करने के लिए केवल तीन बूटिया थी, एक 'तूतुआ', दूसरी 'सकरणी' और तीसरी 'त्रिजवा', परन्तु ये बूटिया उत्तर पुरुप्रदेश के संजीवसञ्जी पर्वत पर ही मिल सकती थी। इन बूटियो को इन्द्रकाल पर्वत की गुफा मे ईश्वर की गाय के गोवर में मिलाना पडता था। वहां जाने की सामर्थ्य केवल उसीको थी जिसके मुंह फाडने से चाद और नक्षत्र दिखाई पडे। हनुमान ही इस काम के योग्य थे। वह तुरन्त गये और क्षण भर मे यथेष्ट बूटिया ले आये। इन बूटियो को पत्थर की सिल पर पीसना था। सिल थी पाताल के राजा कालानाग के पास और बट्टा था दशकठ के पास। वह इसका तकिया बनाकर सोता था। हनुमान दौडकर पाताल से सिल ले आये और बट्टा लेने के लिए दशकठ के महल मे घुसे।

उन्होने माया से सबको सुला दिया और वहां घुस गये, जहां दशकठ अपनी रानी मण्डो को गोद मे लिये सो रहा था। उन्होने दशकठ के सिराहने से बट्टा खीच लिया और

चलना चाहा । परन्तु इसी बीच उनको कुछ शरारत सूझी । उन्होंने राजा की लट रानी की लट से बांध दी और शाप दिया कि जबतक रानी राजा के तीन थप्पड़ न मारे लट न खुले । इतना कर हनुमान अपने पड़ाव को चल पड़े । परन्तु चलने से पहले उन्होंनें उस अभिशाप को दशकंठ के माथे पर लिख दिया ।

बूटियो के प्रयोग से लक्ष्मणजी उठे । सबको बड़ा हर्ष हुआ ।

इधर दशकठ की आंख खुली । उसने उठना चाहा, परन्तु लट तो बधी थी रानी की लट से । झटका लगा । उसे बुरा लगा और बिगड कर दूसरी ओर सिर हटाया । उधर भी झटका लगा । अब उसे पता चला कि यह क्या हो गया । उसने लट की गाठ खोलनी चाही, परन्तु लट न खुली । उसने अपने सेवकों को बुलाया और अपने गुरु गोपुत्र को भी । ऋषि दौड़े आये । उनकी दृष्टि दशकठ के माथे पर पड़ी । परन्तु वह करे तो क्या करे । एक स्त्री के हाथ से राजा के तीन थप्पड लगवाना भी तो राजा का घोर अपमान था । और ऐसा करना शुभ शकुन के भी विरुद्ध था । अतः गोपुत्र ने उस उपाय को तो छोड़ दिया, परन्तु अपनी दिव्य शक्ति का प्रयोग आरभ किया । परन्तु उसका कुछ परिणाम न निकला और दोनों सिर लगातार टकराते रहे । दोनों को कष्ट पहुचता रहा । अब तो हनुमान के निर्दिष्ट उपायों को छोडकर और कोई उपाय न था । महाराज दशकंठ को झुकना ही पड़ा कि अपनी रानी के हाथ से तीन थप्पड़ खायें ।

ये बन्दर कितने दुष्ट थे ! हानि की हानि पहुंचाई और

अपमान का अपमान किया। इनका तो बीज नाश ही करना होगा।

बदला लेने के लिए दशकंठ ने चक्रवाल के राजा दबनासुर को बुलाया, जो उसका भाई था। भाई की विपत्ति का हाल सुनकर राक्षस दौड़ा आया और उसने अपना शरीर बढ़ाकर ब्रह्मा की काया के बराबर कर लिया और अपनी जीभ को निकाल उसमे सूर्य को छिपा लिया। उसका बोझ इतना था कि भूमि नीचे धंस गई और वह स्वयं भी आधा उसमे समा गया। अब उस धड़ मे से दो बड़े-बड़े हाथ निकले जिन्होंने समस्त रामदल को घेर लिया। बंदर लोग एक-एक करके उसके मुंह मे जाने लगे और वह बिना चबाये ही उनको निगलने लगा। समस्त वानर दल से चीख-पुकार उठने लगी। परन्तु राम को न भय था न निराशा। उनकी आज्ञा से सुग्रीव ने उसकी भुजाएं काट ली। पीड़ा के मारे राक्षस परेशान हो गया और उसने अपना असली रूप धारण कर लिया। सारे जगत मे यकायक रोशनी फैल गई। राम ने तुरन्त एक बाण छोड़ा, जो राक्षस के पेट मे लगा। उसकी मृत्यु हो गई, उसके पेट से सारे बंदर निकल पड़े। परन्तु वे प्राणशून्य थे, राम ने एक तीर और छोड़ा जो इन्द्रपुरी पहुंचा। इन्द्र आ गये। इन्द्र ने जल के छींटे दिये और सारे बन्दर जी उठे। सारे वानर-दल मे हर्ष के नारे लगने लगे।

●

अमृत

महारानी मडो भी अपने पति की सहायता करने लगी। वह जानती थी कि मृत्यु को कैसे वश में किया जाय और मृतकों को कैसे पुनर्जीवित किया जाय। उसने उमा से अमृत बनाना सीखा था। यदि एक बार वह अमृत बनाने मे सफल हो सके तो उसके छिड़कते ही उसके पति की सारी मरी हुई सेना उठ खड़ी होगी और फिर युद्ध होने लगेगा। उस अमृत के विरुद्ध तो राम के बाण भी कुछ न कर सकेंगे। सम्भव है कि राक्षस घायल होकर गिर पड़े, परन्तु वे फिर उठ खड़े होंगे और अधिक बल से लड़ेंगे। यह सोच मण्डो ने अमृत बनाने के लिए 'संजीव' यज्ञ का आरम्भ किया।

इससे दशकण्ठ फिर आशान्वित होकर अपने दो पुत्रों, दशगिरीवन और दशगिरिधर के साथ रणक्षेत्र में आ गया। लक्ष्मण के बाणों ने दोनों भाइयों को भगा दिया और राम ने पिता का रास्ता रोक दिया।

इसी समय मण्डो का अमृत तैयार हो गया। अमृत को को छिड़कते ही समस्त राक्षस सेना जी उठी। कुम्भकरण भी जी उठा। सहस्सतेज अपने हजार सिरों के साथ उठ खडा हुआ। सँग् आदित्य अपने मायावी शीशे के साथ और दूसरे सभी भयावह राक्षस फिर प्राण-सम्पन्न हो गये। युद्ध फिर जोरों से छिड़ गया। अब तो युद्ध का अन्त होना ही

कठिन था, क्योकि मरे हुए राक्षस अमृत के वल पर फिर जिलाये जा सकते थे।

इसके लिए एक ही उपाय शेष था। किसी प्रकार मण्डो के यज्ञ मे बाधा डाली जाय। उसकी एक ही तरकीब थी। यदि मण्डो के मन मे विषय-वासना जागृत हो जाय तो यह यज्ञ असफल हो सकता था, क्योकि यज्ञ के लिए आत्म-सयम आवश्यक होता है।

इसके लिए हनुमान ने दशकठ का भेष वनाया। नीलनद उसका हाथी बना। जम्बूवन हाथी का महावत और बन्दर राक्षस बन गये। अब यह बनावटी दशकठ अपने लश्कर को लेकर विजय की खुशी मनाता हुआ लका जा पहुंचा।

जुलूस लका की गलियो मे होता हुआ वहा आया जहां मण्डो तपस्विनी बनी हुई अमृत बनाने मे सलग्न थी।

"अब अमृत की क्या आवश्यकता ?" इस नकली दशकठ ने मण्डो से कहा। "अब क्यो कष्ट कर रही हो ? राम और उसका भाई तो सेना सहित मरे पडे हैं। मण्डो हर्ष के मारे उछल पडी और नकली दशकठ के गले से लिपट गई। विषय-वासनापूर्ण चुम्बन उसके होठ पर दिया गया और विषय-वासनापूर्ण आलिंगन ने मण्डो की वृत्ति बदल दी। इस प्रकार हनुमान की चाचाकी ने मण्डो का काम बिगाड दिया। लेकिन दशकठ रूपी हनुमान यह बहाना करके चल दिया कि अभी बिभेक जीता है। उसको भी समाप्त करके आऊगा।

उधर दशकठ अमृत की राह देख रहा था। जिलाये हुए राक्षस मर चुके थे और उनको फिर से जिलाना था। घटो बीत गये। अमृत न आया। केवल हवा के झोके आ रहे थे,

जिनसे राक्षसों में प्राण आना कठिन था। दशकंठ अकेला रह गया। वह बार-बार देखता था कि अमृत अब आये, अब आये। परन्तु उसे कोई अमृत लाता हुआ दिखाई न दिया। अब वह मण्डो की यज्ञशाला की ओर लपका।

दशकंठ को छल का पता चला। हनुमान की शरारत पर उसे बडा क्रोध आया, मण्डो को जब ज्ञात हुआ कि उसका सतीत्व नष्ट हो गया, तो वह बेहोश होकर गिर पड़ी।

यह सबकुछ तो हुआ, परन्तु उन दोनों का परस्पर प्रेम ज्यों-का-त्यों बना रहा।

: ३५ :

आत्मा का पिंजड़ा

अपने सारे उपायों को निष्फल और अपनी महारानी को अपमानित देखकर दशकंठ को बड़ा क्रोध आया। वह फिर रणक्षेत्र की ओर चल पड़ा यह निश्चय करके कि अब की बार तो शत्रु का बीजनाश ही कर देना पड़ेगा।

दोनों दल लड़ने लगे। राम ने दशकठ का सामना किया। दोनो ओर से तीर छूट रहे थे और आकाश मे अंधेरा छा रहा था। राम अद्वितीय वीरता से लड़े, परन्तु दशकठ पर असर न हुआ। उसका सिर कटकर गिरता था, तो फिर दूसरा तैयार हो जाता था। उसकी भुजाये कटती थी और फिर जुड़

जाती थी। किनना ही तीव्र शस्त्र क्यो न हो, वह राक्षस का कुछ भी विगाड़ न कर सका।

अव विभेक ने राम की सहायता की। उसने राम से कहा कि दशकठ की आत्मा तो उसके शरीर से निकाल लिया गया है और वह उसके गुरु गोपुत्र के पास एक पिजडे मे मुरक्षित रक्खा है। दशकठ तो तभी मरेगा जव उसके आत्मा को मार डाला जाय।

हनुमान इस काम के लिए चल पडे। परन्तु उन्होने राम से कहा, महाराज एक वात हे। इस काम के करने मे कई चाले चलनी पडेगी। आप मुझे शत्रु-दल मे शामिल देखकर मेरी भक्ति पर सन्देह न करना।

राम को सचेत करके हनुमान गोपुत्र की कुटिया पर चले। वह जानते थे कि गोपुत्र मूर्ख है। हनुमान के साथ इन्द्र का पौत्र अगद भी गया।

दोनो बन्दर गुरु की कुटिया पर पहुंचे। हनुमान ने झूठ-मूठ रोना आरभ किया और वोले "महाराज! राम ने हमारे साथ वडा दुर्व्यवहार किया है। हमने तो आयु-भर उसकी सेवा की और उसके लिए अपनी जान भी जोखम मे डालते रहे, परन्तु राम वडे कृतघ्न निकले। अव हमसे राम की सेवा नही होती। इससे तो यही अच्छा है कि हम दशकंठ की सेना मे आ जाये। वह तो अपने सेवको को उचित रीति से पुरस्कृत करते हैं। परन्तु हमको भय है कि दशकंठ हमको शायद स्वीकार न करें क्योंकि हमने उनके पुत्रों और भाइयो का वध किया है। सम्भव है वह हमको देखते ही क्रोध करने लगे और हमको मार डाले। गुरुजी हम पर कृपा करके हमारे

साथ चलें और उससे हमारी सिफारिश करदें। हनुमान ढाढ़ मारकर रोने लगे और उनके मुंह पर टपाटप आंसुओं की धार बहने लगी।

यह देख गोपुत्र राजी हो गया और हनुमान के साथ दशकठ के महल की ओर बढ़े। परन्तु 'आत्मा का पिंजड़ा' भी तो लेना था ! हनुमान ने बात बनाई "गुरुजी, आत्मा के पिंजड़े को घर पर न छोड़िये। राम उसकी ताक में है। अवसर पाते ही वह उसे उड़ा ले जायगा। इस पिंजड़े को तो हम अपने ही साथ ले चलें।" गुरु तो मूर्ख थे ही। वह हनुमान की बातो मे आ गये, और 'आत्मा का 'पिजड़ा' लेकर उनके साथ चल दिये।

तीनो लंकापुरी के पास के ग्रामों मे होकर गुजरे, हनुमान को देखते ही सब राक्षस डर के मारे भागने लगे। कोई अपने बच्चों को गोद में लेकर भागा। कोई अपनी बुड्ढी मा को, कोई अपनी स्त्री को। इस प्रकार हनुमान की उपस्थिति से लका के ग्रामो मे एक तूफान-सा मच गया।

अन्त में वे नगर के द्वार पर पहुंचे। यहां एक और कठिनाई आ उपस्थित हुई। पिजडे को नगर के भीतर कैसे लायें ? नगर के भीतर आते ही, जैसे पक्षी अपने घोंसले को देखकर उसमे भाग जाता है, इसी प्रकार दशकठ की आत्मा दशकंठ के शरीर मे जा घुसेगी। हनुमान ने सुझाया कि 'आत्मा के पिंजड़े' को तो अंगद के हाथ मे छोड़ दीजिए और आप और हम नगर के अन्दर चले। जब लौटेंगे तो इसको ले लेंगे। यही निश्चय हुआ और हनुमान और गोपुत्र नगर के भीतर घुस गये और 'आत्मा का पिजड़ा' अंगद के हाथ में

रह गया।

हनुमान बड़े खुश थे कि 'आत्मा का पिंजड़ा' अगद के हाथ लग गया। परन्तु वह स्वय भी पिंजड़े के साथ रहना चाहते थे। अत. अचानक चलते-चलते वह बोल उठे, "गुरु-जी ! आप चलिये। मैं अभी आया। अगद को एक बात बताता आऊ कि उसे सावधान रहना चाहिए। कही ऐसा न हो कि उसे अकेला पाकर और शत्रु समझकर राक्षस उसे मार डाले।" ऐसा बहाना करके वह अगद के पास आगये और माया से उन्होने एक नकली पिंजड़ा बनाया और देकर अगद से बोले "असली पिंजड़े को तो तुम लेजाकर समुद्र के तट पर गाड़ दो, फिर यहां आकर यह नकली पिंजड़ा लेकर गुरुजी को दे देना। उसके बाद तुम समुद्र-तट पर पहुचकर मेरी बाट जोहना। जब मैं मु ह खोलू और तुमको उसमे सूर्य और चाद दिखाई पड़े तो तुम उस असली पिजड़े को लेकर आकाश में उड़ जाना और वहा मुझे पिजड़ा दे देना।"

ऐसा प्रबन्ध करके हनुमान गुरु गोपुत्र के पास लौट आये और वे दोनो दशकठ के सामने उपस्थित हो गये।

हनुमान ने रो-रोकर दशकठ से राम के दुर्व्यवहार की कहानी सुनाई और दशकठ की दया का पात्र बनना चाहा। बन्दर बोला "महाराज, क्या यही पुरस्कार है मेरे लका जलाने का कि राम ने मेरे हाथ मे, स्नान करने का एक अगोछा पकडा दिया ?" दशकठ उछल पड़ा और तालिया बजाकर खुश होता हुआ बोला, "आजो, आजो! आज से तू मेरा धर्म-पुत्र हुआ।" दशकठ की समझ मे नही आया कि हनुमान तो छल से उसके प्राण लेने आया है।

दूसरे दिन हनुमान ने वहाना बनाकर कहा, "आज मैं अकेला ही लड़ूंगा। इन दोनों को पकड़ लेना कोई कठिन काम नही है।"

हनुमान को राक्षस-दल की ओर से लड़ता देखकर बन्दर डर के मारे भागने लगे। लक्ष्मण अकेले रह गये। लक्ष्मण को इस षड़यन्त्र का पता न था। उनको बड़ा आश्चर्य हुआ कि हनुमान शत्रु से जा मिला। उन्होंने हनुमान से लड़ना आरंभ किया। हनुमान भी झूठ-मूठ की लड़ाई लड़ता रहा। सध्या हो गई और युद्ध रुक गया।

हनुमान लंका-पति के पास पहुंचे और अपनी बड़ाई की डींगें मारने लगे। "महाराज! सब बन्दर भाग गये। यदि सध्या न हो जाती तो राम और लक्ष्मण दोनों को बांधकर मैं आपके चरणों मे ला उपस्थित करता।"

दशकंठ हर्ष के मारे फूल उठा और पुरस्कार के रूप में उसने न केवल इन्द्रजित् की समस्त सम्पत्ति ही हनुमान के हवाले करदी, बल्कि उसकी असली स्त्री को भी हनुमान को दे दिया। यह असली स्त्री अपने मृत पति को और उसकी वीरता को भूल गई। उसने अपनेको भाग्यशाली समझा जो उसे एक ऐसा वीर पति मिल गया, जो उसकी विषय-वासना को सन्तुष्ट कर सकेगा।

प्रातःकाल हुआ। रणभेरी फिर बजी। इसबार राजा दशकंठ भी हनुमान के साथ हो लिये। यह निश्चय किया गया कि हनुमान तो आकाश में अन्धेरा उत्पन्न करके राम और लक्ष्मण को उठाकर भाग जायं और दशकंठ पीछे से समस्त राम-दल को समाप्त कर दे। परन्तु हनुमान के जी में तो यह

था कि आज दशकठ का अन्त ही कर देना उचित है।

जैसे ही हनुमान आकाश में पहुचे, उन्होने जभाई ली और सूर्य तथा चन्द्र उनके मु ह से चमकने लगे। अगद खडा समुद्र के तट पर देख रहा था। इस माया को देखते ही वह कूदा और आत्मा का पिजड़ा हनुमान के हाथ मे दे दिया।

हनुमान ने पिजड़ा लाकर राम के हवाले कर दिया। राम हर्ष और कृतज्ञता के मारे फूले न समाये। लक्ष्मण बोल उठे कि आकाश के तारे गिनना सुगम है, समुद्र की थाह लेना आसान है, परन्तु हनुमान की बुद्धि की प्रशसा करना कठिन है। राम ने कहा कि हनुमान तो रत्नो का रत्न है। तीनो लोको मे उसके समान दूसरा नही मिल सकता।

अब यह ठहरा कि राम तो ब्रह्मास्त्र छोडे और हनुमान आत्मा के पिजडे को तोड़ दे। अब हनुमान दशकठ के पास पहुंचे जहा वह बन्दरो का सफाया कर रहा था। दशकठ हनुमान को देखते ही हर्ष के मारे फूल उठा, परन्तु शीघ्र ही उसकी आखो के सामने अधेरा छागया और निराशा की छाया उसके मुख पर छा गई। उसने देखा कि बन्दर उसकी आत्मा के पिंजडे को उछाल रहे हैं और उसे अनेक प्रकार से ताने दे रहे हैं। उसका जी कापने लगा और उसका साहस छूट गया। जीते-जी ही उसकी मृत्यु आगई और वह खडा-का-खड़ा रह गया। उसके मु ह से ये शब्द निकले, "अरे! क्या यही कृतघ्न हनुमान है? क्या इसीको मैंने अपना धर्मपुत्र बनाया था? इसीने मेरे साथ विश्वासघात किया। मैंने इसके साथ मित्रता की थी और यह ऐसा निकला! क्या इस जगत मे विश्वास नही रहा है? क्या नेकी का बदला बदी?

परन्तु इस चीख-पुकार का हनुमान पर कोई असर नही पड़ा। उसने न तो ताना सुना, न पाप के डर से भयभीत हुआ। उसने कहा, "मैं पिजड़ा तब दूगा, जब तुम सीता को लौटा दोगे।" परन्तु दशकठ ने सीता को देने से इन्कार कर दिया। "मर जाऊंगा पर सीता को न दूगा। मैंने उसमें जीवन गवाया है और उसमे ही मरूंगा। मैंने आयु-भर सीता से स्नेह किया है। इस जीवन मे सीता मेरे हाथ नहीं आई। परन्तु मरण पीछे दूसरा जन्म लूगा। उसमे आशा है, मुझे सीता की प्राप्ति होगी।"

यह कहकर दशकठ रणक्षेत्र से चल दिया और कहने लगा, "कल आकर प्राण दूगा। आज जाता हूं, अपनी प्राण-प्यारी रानी मण्डो से विदा हो आऊ।"

: ३६ :

दशकंठ-वध

दूसरा दिन हुआ। सूर्य भगवान का उदय हुआ। चारों ओर प्रकाश और जीवन के चिह्न दिखाई पड़ने लगे। लोग नई उमगें और नये विचार लेकर काम करने लगे। परन्तु लका के महलों में अन्धेरा था। हर्ष का नाम न था। मृत्यु के चिह्न दिखाई पड़ रहे थे। निराशा-ही-निराशा अपना घोर-तम रूप दिखाकर लोगो को डरा रही थी।

आज दशकंठ के जीवन का अन्तिम दिन था। आज से यह सौन्दर्यमय जगत उसकी आंखों के सामने से लुप्त हो

जायगा। आज से कोई उषा काल उसके जीवन मे हर्ष का सचार न कर सकेगा, न कोई सध्या उसको शान्ति का स्वप्न दे सकेगी । उसके सामने अनन्त और अपार अन्धकार था, जिसमे जीवन के समस्त सुख विस्मृत हो जाते हैं और किसी अच्छी घडी की याद नही रहती। आज वह घडी है जब उसको सुखमय ससार से विदा लेनी है। आज वह अतिम बार अपनी महारानी मण्डो से मिलने आया है, जो सदा हर्ष और शोक उसकी साथिनी रही।

जिस कमरे मे मण्डो राजा दशकठ के साथ भोग-विलास किया करती थी उसीमे आज उसको उससे विदा लेनी है। दुखी रानी अपने पति के चरणों पर गिर पड़ी । उसका सौन्दर्यमय मुख अब भी अपने मनोरम रूप की छटा दिखा रहा था, परन्तु आज उसपर उल्लास न था। शोक के मारे उसके गडस्थल से आसुओ की धारा बह रही थी, आज के पश्चात् महल सूना हो जायगा। वह अपने प्राणप्यारे स्वामी का दर्शन न कर सकेगी। विजयिनी लका आज अपने विजेता से शून्य हो जायगी। जो प्रकाश अदम्य था, वह आज बुझने वाला था। उसका पति, जिससे देवलोक के देवता कापते थे, आज एक मनुष्य के हाथो मारा जाने को था। वह पति जिसकी छत्रछाया उसको समस्त सासारिक दु खो से बचाया करती थी, आज स्वय मृत्यु के गाल का ग्रास बन रहा था। आज से वह अकेली हो जायगी । कोई उसके दु ख या सुख का साथी न रहेगा। उसके जी को उसके पति के अतिरिक्त कोई सान्त्वना देनेवाला न था। उसने हाथ जोड़कर विनय की, "हे प्राणपति ! आप सीता को लौटा दे और अपने

को नाश से बचा ले ।" परन्तु राक्षस-पति अपनी इस बात पर अड़ा रहा । "अरे ! इसी सीता के लिए तो मेरे प्यारे भाई और बेटे मारे गये । मैं इसीको अब दे दू । तो उनकी आत्मा मुझपर घृणा करेगी । देवलोक मे मेरी हँसी होगी । जो भी हो, आज मैं लड़ूगा और प्रेम के लिए प्राण दे दूगा ।"

अपनी छाती पर पत्थर रखकर दशकठ अंत में मण्डो से विदा लेकर रणक्षेत्र को चल दिया । ऐसा प्रतीत होता था मानो सूर्य ने अपना प्रकाश त्याग दिया हो ।

परन्तु जब इस संसार को छोड़ना ही है तो वीरता से छोड़ना चाहिए । उसने देवलोक के सम्राट् इन्द्र का रूप धारण कर लिया और सिहों से चलाये जानेवाले रथ पर आरूढ़ हो गया । महल से बाहर होते ही पुराने स्मरण उसके मन में जागृत होने लगे । उसने लौटकर आंख फेरी । उसका सुन्दर महल खड़ा था और उसमें उसकी प्राण-प्यारी पीछे छूट रही थी । इन जड़ दीवारों के भीतर उसने स्वर्ण समान जीवन का सुख भोगा था । इनके बाहर आज उसे मृत्यु दिखाई पड़ती थी । जो महल उसको स्वर्ण समान आनन्द देता था आज उससे छूट रहा था ।

उसकी आनन्द वाटिका सामने विद्यमान थी । वही खिले हुए पुष्प और वही स्वादिष्ट फल । उसी वाटिका में सीता भी थी जिसके लिए उसने अपना सभी कुछ खो दिया था । वास्तव में उसके हृदय में सीता के लिए स्नेह था। यदि स्नेह न होता तो जब सीता ने उसे अनादर और घृणा से देखा उस समय उसको उसपर क्रोध आ सकता था । क्या वह वहां जाय और एक बार सीता को देख आये ? नहीं! नही !

ऐसा करना उचित नही है।" सीता ने मेरा सब कुछ नष्ट कर दिया। सुख, सम्पत्ति, राज-पाट, भाई-बन्धु और देश। परन्तु सीता मेरी एक चीज़ का नाश नही कर सकती। और वह है मेरा आत्माभिमान। कोई यह न कह पावेगा कि दशकठ मृत्यु से भय खाकर भाग निकला। सीता की मायामयी प्रतिच्छाया मेरे हृदय मे सदा बैठी रही है। उसीको लेकर मैं रण मे जाता हूं और उसीको लिये हुए ही प्राण दूगा।'

ऐसा कहकर वह दु ख के साथ आगे बढा। निराशा की लहर उसके शरीर मे दौड गई। वह मृत्यु को अनुभव करने लगा। आज उसे अकेलापन अनुभव होता था। इतनी वड़ी सेना के साथ और फिर भी अकेलापन ? परन्तु सेना भी तो साहस छोड़ चुकी थी। उसमे तेज नही था। उसके नगाड़े मे उत्साह शेष नही रहा था। उसकी फौज का भडा भी, जो सदा विजय के हर्ष से लहराया करता था आज निस्तब्ध था, क्योकि आज से उसको विजयिनी सेना के आगे चलने का सौभाग्य प्राप्त न हो सकेगा। जिन सैनिको के जयघोष से शत्रु के हृदय काप जाया करते थे, उनके शब्दो मे आज जीवन न था। जिस रथ के पहियो की ध्वनि शत्रुओ को कपा देती थी वे आज चुपचाप शोक मनाते जा रहे थे। बादलो मे अधेरा छा रहा था और उसकी मृत्यु के चिह्न दिखाई पड रहे थे। ऐस प्रतीत होता था कि उसके रथ के सिंह उसीकी अर्थी को उठाये लिये जा रहे हो।

दशकठ उन साक्षात् अपशकुनो का सहन न कर सका, जो उसको दिखाई पड़ रहे थे। उसने अपने दल को बढाया। यदि मरना ही है तो जल्दी मरना चाहिए। एक बार क्षण

भर में मर जाना अच्छा। मृत्यु की आग में झुलस-झुलसकर मुद्दतों में प्राण देने से क्या लाभ"?

रणक्षेत्र में राम से मुठभेड़ हुई। दशकंठ ने एक भयानक अस्त्र छोड़ा। परन्तु आज वह अपने शत्रु से नही लड़ रहा था। आज तो वह अपने उपासक देव की अर्चना कर रहा था, जिसके हाथ से आज उसको राक्षस योनि से छूटना और मोक्ष प्राप्त करना था। इसलिए ज्योंही अस्त्र छूटा उसमें से फूल निकलकर राम के रथ के चारो ओर गिरने लगे। राम ने चकित होकर देखा तो दशकठ नही था, अपितु सामने इन्द्र-देवता खड़े थे। राक्षस-सम्राट् इन्द्र के समान सुन्दर रूप धारण किये हुए उनके सामने खड़ा था। राम को अच्छा न लगा कि ऐसे सुन्दर रूप का नाश करे, परन्तु पवन-पुत्र पर तो प्रमदा के लावण्य के अतिरिक्त और कोई सौन्दर्य प्रभाव नही डालता था। उन्होंने राम से कहा कि आप क्यो इस झूठे सौन्दर्य पर मोहित हो रहे हैं।

राम शीघ्र ही सचेत हो गये। उन्होंने अपना ब्रह्मास्त्र उठाया और राक्षस-सम्राट् के ऊपर छोड दिया। अस्त्र विद्युत के समान दशकठ के हृदय मे लगा और उसका असली कुरूप शरीर सामने गिर पड़ा। जिसने ससार-भर मे मौत-ही-मौत ढा दी थी, वह आज स्वय मौत का शिकार वन गया।

अन्त में महाशत्रु का पतन हो गया। वह गिर गया, परतु पराजित नही हुआ। उसने शनैः-शनैः अपनी आंख खोली, उसने विभेक को देखा, जिसने अपने भाई को मारकर उसका बदला लिया। उसके आत्मा में भिन्न-भिन्न प्रकार के भाव उठने लगे। खेद, क्रोध, पश्चात्ताप और पीड़ा। उसके एक

मुख से कुछ शव्द निकल पड़े, "विभेक तुमने अपने ही भाई को क्यो मरवाया।" दूसरे मुह से आवाज़ निकली, अरे क्या तुम्हारी रगो मे वही खून नही था, जो मेरी रगों में था ? अरे मेरा रक्त गिराकर तो तुमने अपना ही रक्त गिराया है। तुम क्या अपने ही भाई का रक्त बहाकर लका की गद्दी पर बैठोगे ? मुझे आशा है कि कुछ भी हो, तुम लका की स्वाधीनता को न बेचोगे।"

अब उसको बेचारी मण्डो का ध्यान आया और उसका तीसरा मुख कहने लगा, "देखो ! मण्डो की रक्षा करना, जैसीकि तुम लका की रक्षा करोगे।" अब उसको अपने वश का स्मरण आया, जो ब्रह्मा से चला आता है। उसके चौथे मुख ने कहा, "बिभेक, देखो अपने इस वश की रक्षा करना।"

अब उसे अपने पापो की याद आई, वह सोचने लगा कि मैंने किस प्रकार धर्म-पथ-से वैमुख्य धारण किया। यह सोचते ही उसका हृदय दु ख और अनुताप से भर गया। उसके पाचवें मुख ने कहा, "देखो बिभेक, पाप-पुण्य का विवेक रखना।"

अनन्तता के द्वार पर खड़ा हुआ दशकठ आज अपने सूर्य के अन्त को देख रहा था। उसने सोचा कि जब मरता ही हूं तो बिभेक की शत्रुता को सोचकर क्यो मरू। शत्रुता-पूर्ण भाई के सामने मरने से तो प्रेम-पूर्ण भाई के सामने मरना अच्छा होगा। अतः उसके छठे मुख ने बिभेक से क्षमा की याचना की।

अब प्राण त्यागते-त्यागते उसको अपनी गद्दी, अपनी प्रजा का ध्यान आया। वह सोचने लगा कि यदि लका में कोई

अच्छा राजा न रहा तो विदेशी आकर उसपर आक्रमण करेंगे और देश दासता की बेड़ियों में जकडा जायगा। अतः उसके सातवें मुख से निकला, "देखो दृढता से राज करना। कोई कुल नष्ट न होने पावे।"

अब इस अद्वितीय वीर योद्धा की आंखें बन्द होने को थी। वह बेहोश होगया। उसे कुछ याद न रही। वह भूल गया कि मै कभी राजा था। वह भूल गया कि उसीके पास बिभेक, उसका भाई खडा था, जिसने अपने देश और अपने नरेश के साथ विद्रोह करके अपने वश का नाश कर दिया। उसको अव इतना ही याद रहा कि मै बिभेक का बड़ा भाई हूं, मैंने इसे गोद में खिलाया था। इसपर क्रोध न करू और न वदला लेने की भावना रक्खू। अब आठवे मुख से आवाज आई, "अरे यह तो मेरा ही दोष था कि मैंने अपने भाई को अपना शत्रु बना लिया। मुझे ऐसा दुर्व्यवहार नही करना चाहिए था।"

अब जीवन की बत्ती बुझने को आगई। यह उसकी अतिम चमक थी। वह मरने को था, उसने नवें मुख से अंतिम बार अपने भाई बिभेक से प्रार्थना की कि "तुम आज ही मेरे शरीर का दाह कर देना, जिससे सूर्य की किरणें दूसरे दिन मेरे शव पर न पड़ें और कोई मेरे मृतक शरीर पर दोष आरोपित न करे।"

अब उसमे से शक्ति जाती रही। वह चेतन-शून्य हो गया। उसके दशवें मुख से आह भी न निकली। लंका का सम्राट् अतिम नीद सो गया।

उसी समय हनुमान ने आत्मा का पिंजड़ा तोड़ दिया,

और दशकठ का जीवन समाप्त हो गया। वह जीवन जिसने मनुष्यो और देवो को भयभीत कर रक्खा था। आकाश से फूलो की वर्षा होने लगी। दैवी दुन्दुभिया आनन्द के गीतो से गूजने लगी। शान्ति का पवन ससार के ऊपर वहने लगा। तूफान की अधेरी रात का अन्त हुआ और सुख तथा शान्ति के दिवस ने अपने प्रकाश से जगत को उल्लसित कर दिया।

. ३७ :

सीता की अग्नि-परीक्षा

लकापति के पतन पर लका मे शोक छा गया। किसीके मुख पर हँसी न थी। रोना, पीटना पडा था। बिभेक भाई के शोक से रो रहा था और मण्डो पति के वियोग मे त्राहि-माम् त्राहिमाम्' कर रही थी। परन्तु अब रोने से क्या होगा। मरनेवाला तो लौटकर आता नही, अत सबने धैर्य धरा और दशकठ की अन्त्येष्टि की तैयारिया करने लगे।

उसके वाद लका मे फिर हर्ष के चिह्न दिखाई पडे। लोगो ने शोक छोड दिया और नये राजा बिभेक के अभिपेक का हर्ष मनाने लगे। रानी त्रिजटा उसके बाये हाथ की ओर वैठी और रानी मण्डो दाहिनी ओर।

दशकठ की मृत्यु और उसके दाह-सस्कार हो जाने के बाद स्वभावत राम ने सीता को याद किया। उन्होने बहुत दिनो से सीता को न देखा था। अत बिभेक तुरन्त गये और सीता को ले आये। यद्यपि राम के हृदय मे सीता के

लिए अगाध प्रेम था, तो भी इतने दिन बाहर निकली हुई सीता को फिर अपनी पत्नी बनाने में उनको सकोच था। वह डरते थे कि लोग क्या कहेगे ? सीता चुपचाप आगे आ रही थी। उसके घूघट के अन्दर से उसके मुखमंडल पर हर्ष के चिह्न दीख पड़ रहे थे। उसकी आखों से प्रकट हो रहा था कि अब उसकी विपत्ति का अन्त हो चुका है और अपने प्राणपति से मिलने जा रही है। उसका हृदय आनन्द से भर गया और उसके मुख का सौन्दर्य दुगुना हो गया। परन्तु यकायक ही उसके भी हृदय में एक शका उठ खड़ी हुई। अरे मै इतने दिनो एक अन्य पुरुष के भवन मे रह चुकी हू। क्या मेरे नाथ मुझे ग्रहण करना भी स्वीकार करेगे ? इस शका से वह अपने पति की ओर बढी पर थोड़ी दूर पर बैठ गई, पति से त्यागे जाने का भय और अपने पति के प्रेम की ओर का सन्देह उसे आगे बढ़ने नही देता था।

परन्तु राम तो उसके प्रेम मे विह्वल थे। वह चाहते थे कि शीघ्र उसका मुख चुम्बन करके उसकी शका को दूर कर दे। परन्तु उनका यह प्रेम इतना बलवान न था कि समाज की शका का विचार न करता। यद्यपि वह जानते थे कि सीता पवित्र है, परन्तु समाज को ऐसा विश्वास कैसे हो ? अकस्मात् उसके मन में एक विचार उठा। उन्होने सीता से पूछना चाहा कि दशकठ ने उसको क्या-क्या उपहार दिया। इससे सीता अपने भावों को प्रकट कर सकेगी।

स्वागत करते हुए राम ने हँसकर पूछा, "सीते, तुमको दशकठ की ओर से क्या-क्या बहुमूल्य उपहार मिले ? क्या तुम उनको दिखा सकती हो, ताकि मैं उनके सौन्दर्य को देख-

कर उनकी प्रशसा कर सकू ।"

यह प्रश्न क्या था कि मानो आकाश से वज्र टूट पडा । "मेरे प्राणपति मुझसे ऐसा प्रश्न पूछ रहे हैं ?" एक नन्हे पौधे पर पाला पड़ गया । शत्रु का तीर इतना कठोर न था जितने पति के ये शब्द । अपने प्यारे पति के शब्दो का बाण तो शत्रु की तलवार से कही अधिक तीक्ष्ण था । दशकठ ने अपने निर्दय शब्दो से कभी उसको इतनी पीड़ा नही पहुचाई थी, जितनी उसके पति के प्रश्न से उसको हुई । ऐसे प्रेम में क्या आनन्द जो शका से सलिप्त हो ? परन्तु सीता ने कहा, "मैं अपने सतीत्व की वह परीक्षा दूगी जिससे शकित हृदय कांप उठेगे और स्त्री के सतीत्व का आदर्श स्थापित हो जायगा । मैं देवों के समक्ष आग मे कूद पड़ूगी और सतीत्व का शुद्ध जल आग को शीतल कर देगा ।"

राम ने आकाश मे एक तीर छोडा । देवगण सीता की परीक्षा को देखने आ गये । क्षणभर मे राक्षसो की नगरी मे देव-ही-देव दृष्टिगोचर होने लगे ।

सुग्रीव ने चिता जमाई और राम के बाण ने आग जला दी । अब वह परीक्षा आरभ हुई जिसने देवो को आश्चर्य मे डाल दिया । सीता धीरे-धीरे धैर्य्यपूर्वक आखो मे प्रेम की किरण चमकाती हुई और हृदय को सतीत्व के वल से सुदृढ करती हुई आगे वढी और अग्नि मे प्रविष्ट हो गई, और एक महा चमत्कार हुआ । सीता के समक्ष प्रकृति ने अपना नैसर्गिक नियम त्याग दिया, अग्नि की हिरण्मयी ज्वालाओं मे से नारायण की दुखिया पत्नी का आविर्भाव हुआ और अग्नि ठडी पड गई । अग्नि की कठोर ज्वालाएं शीतल कमल

के पुष्पों में परिणत हो गई और उनकी सुगन्धि से संसार महक उठा। सीता की सुनहरी जीती जागती मूर्ति ज्वालाओं मे से निकलकर सामने खड़ी थी और सन्देह करनेवाले जगत को वता रही थीं कि स्त्री के सतीत्व से जलती अग्नि शीतल हो जाती है और अंगारे फूल वन जाते हैं।

: ३८ :

राम का अयोध्या लौटना

अग्नि-परीक्षा के पश्चात् राम ने अयोध्या के लिए प्रस्थान किया। वनवास का समय वीत रहा था और उनको भय था कि यदि समय पर न पहुंचेगे तो भरत तथा शत्रुद अपने प्राण त्याग देगे। भक्त विभेक ने प्रार्थना की कि "महा-राज, आप लंका पर राज करे।" परन्तु राम ने यह स्वीकार नही किया। उन्होंने कहा, "मैंने तो अपने अधिकार के लिए युद्ध किया था। किसी अधिकारी को उसकी गद्दी से वंचित करने के लिए नही।"

परन्तु राजधानी को प्रस्थान करने से पूर्व उनको एक और लड़ाई लड़नी थी। दशगिरिवन् और दशगिरिघर के के धर्मपिता अशकरण ने सुना कि उसके दोनों धर्मपुत्र दश-कंठ-सहित राम के हाथों से मारे गये। अतः वह दौड़ा कि उसके लंका छोड़ने से पहले-पहले उनको दंड दे।

उसमे और राम मे विचित्र युद्ध हुआ। राम ने राक्षस

के दो टुकड़े कर डाले, परन्तु दोनो जीवित हो उठे और अब राम को एक के स्थान मे दो से लड़ना पड़ा। राम ने उन दोनो के दो-दो टुकड़े कर डाले। परन्तु आश्चर्य की बात है कि उन दो के चार राक्षस बन गये और राम को चारो से युद्ध करना पडा। अब क्या करना चाहिए ? ऐसे शत्रु को कैसे पराजित किया जा सकता है, जिसे ईश्वर की ओर से ऐसा वरदान मिला हो कि उसके शरीर के जितने टुकडे किये जाय उतने ही राक्षस उत्पन्न हो जाय। उपाय बताने को विभेक उपस्थित था। उसने राम को एक तरकीब सुझा दी। राम ने एक बाण छोडा। उससे शरीर के दो टुकडे हो गये। उन्होंने दूसरा छोड़ा तो उससे वे टुकडे नदी मे बहा दिये गए। परिणाम यह हुआ कि नदी मे बहे हुए उन मृत टुकडो का जीवित होना असम्भव था।

इस प्रकार इस विचित्र शत्रु से छुटकारा पाकर राम भाई, भार्या तथा अन्य साथियो-सहित अयोध्या को चले। समुद्र पार हो गया तो बिभेक ने राम से प्रार्थना की कि महाराज, अब पुल को तोड़ दे, जिससे समुद्र के बहाव मे बाधा न पडे। राम ने यह प्रार्थना स्वीकार की और अनन्त सागर की तरगे फिर बाधा-रहित होकर अपना नृत्य करने लगी।

अभी ज्यादा दूर नही गये थे कि आकाश मे गरज हुई मानो कोई उसके दो टुकडे कर रहा है। यह दशकठ के लडके प्रलयकल्प का शब्द था, जो काल अग्गी के पेट से पैदा हुआ था। उसे पता नही था कि उसके पिता की यह गति हुई है। जब उसे पता चला तो वह अपने बाप की पराजय और मृत्यु का बदला लेने के लिए आया।

राम

सीता

लक्ष्मण
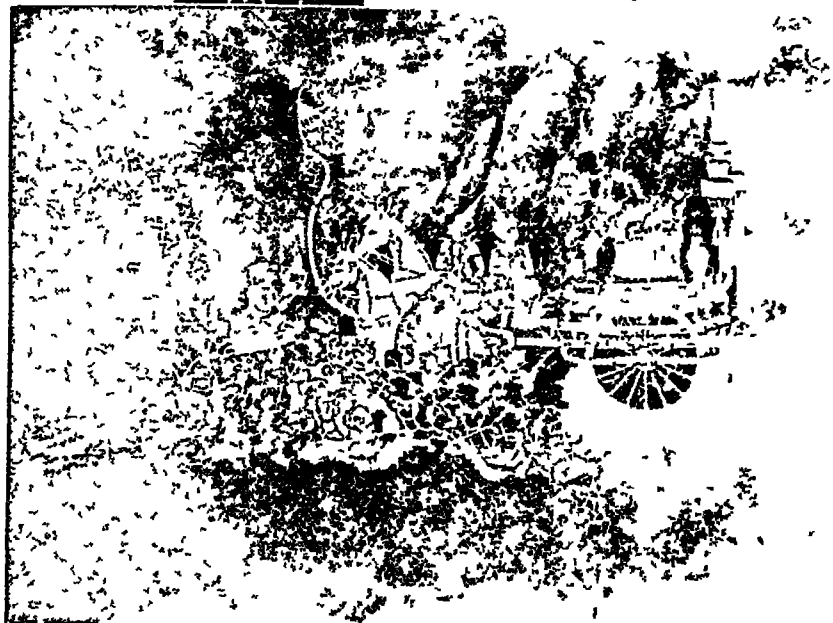
विवाह के उपरान्त राम का अयोध्या मे आगमन (पृष्ठ ३२)

अशोक वाटिका से रावण का निराश होकर लौटना (पृष्ठ २०)
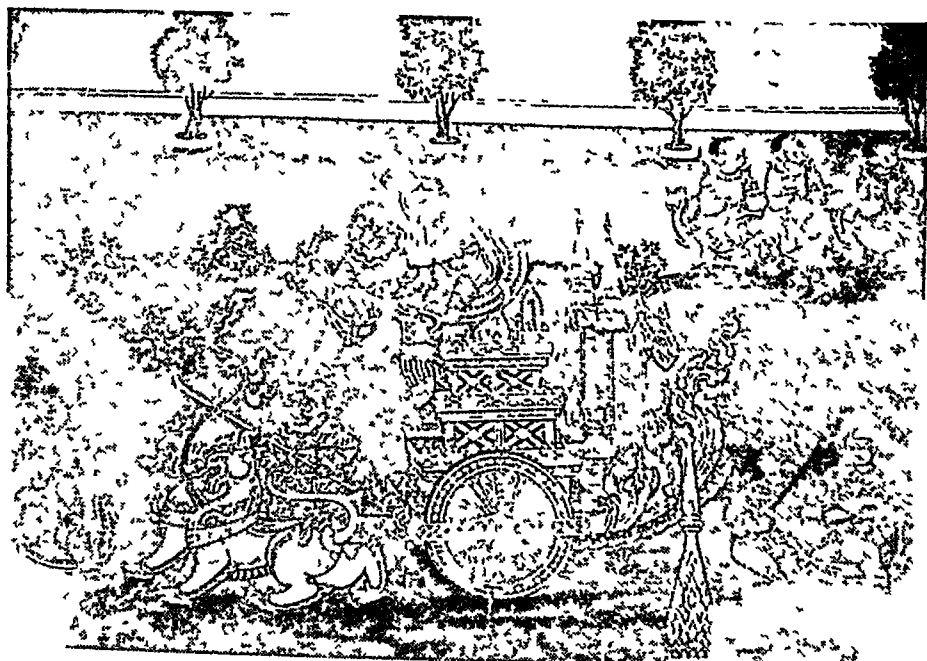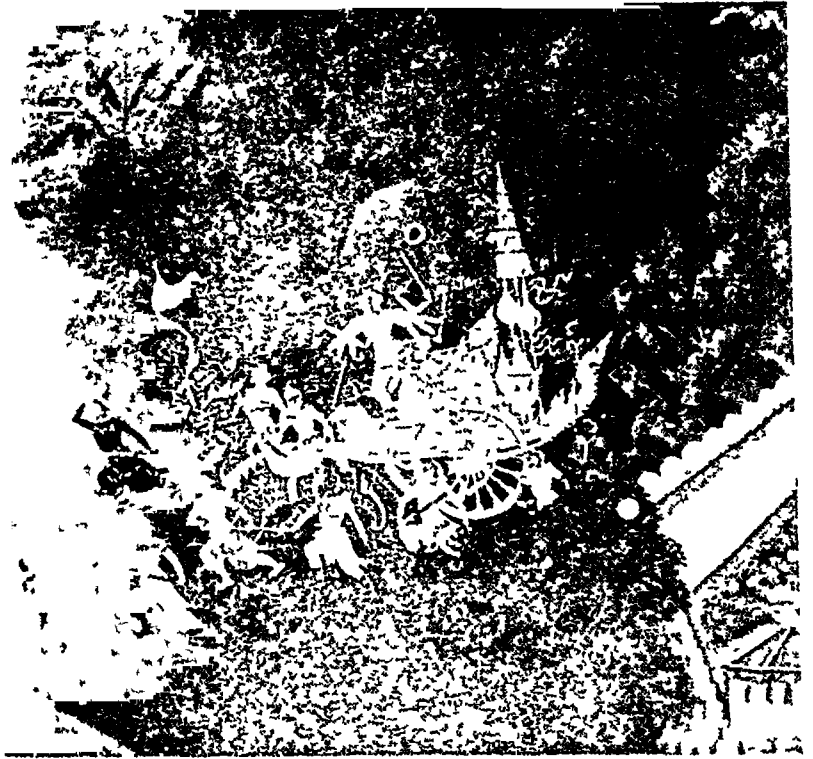
रावण के चक्र द्वारा
जिह्वा की मृत्यु
(पृष्ठ ४०)

मंयराव द्वारा
राम-लक्ष्मण का हरण
(पृष्ठ ७४)

कुम्भकरण की मोक्ष-शक्ति के प्रहार से लक्ष्मण मूर्च्छित (पृष्ठ ८२)

हनुमान द्वारा सहस्त्रतेज का वध (पृष्ठ ९७)

हनुमान और सिद्धासुर का युद्ध (पृष्ठ ९९-१००)

मालीवराज द्वारा राम एव रावण के बीच समझौता कराने का प्रयत्न (पृष्ठ १०३)
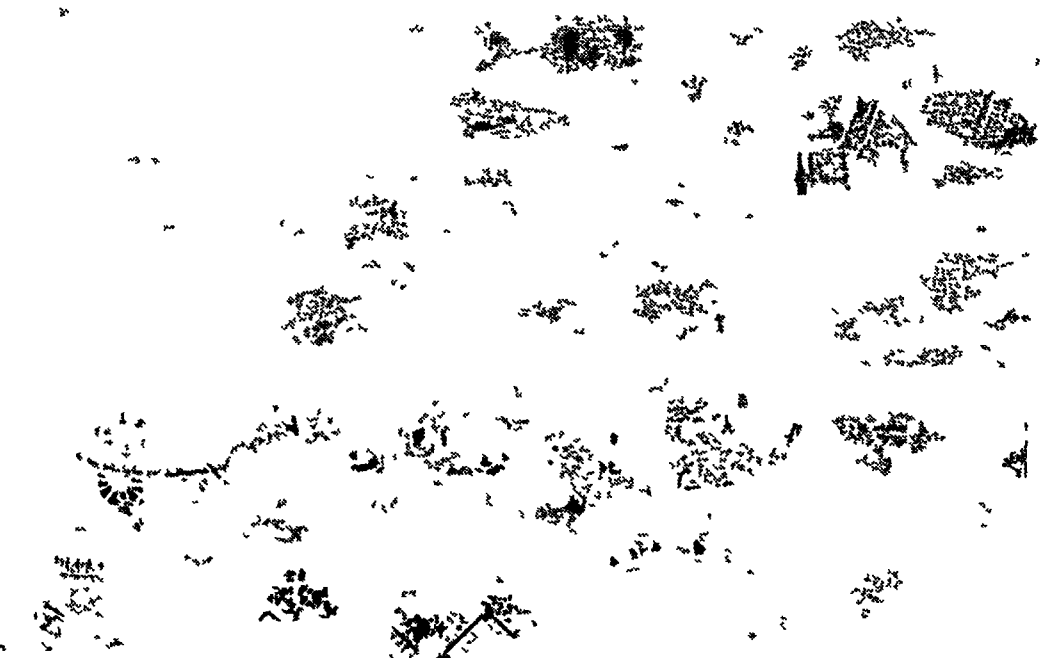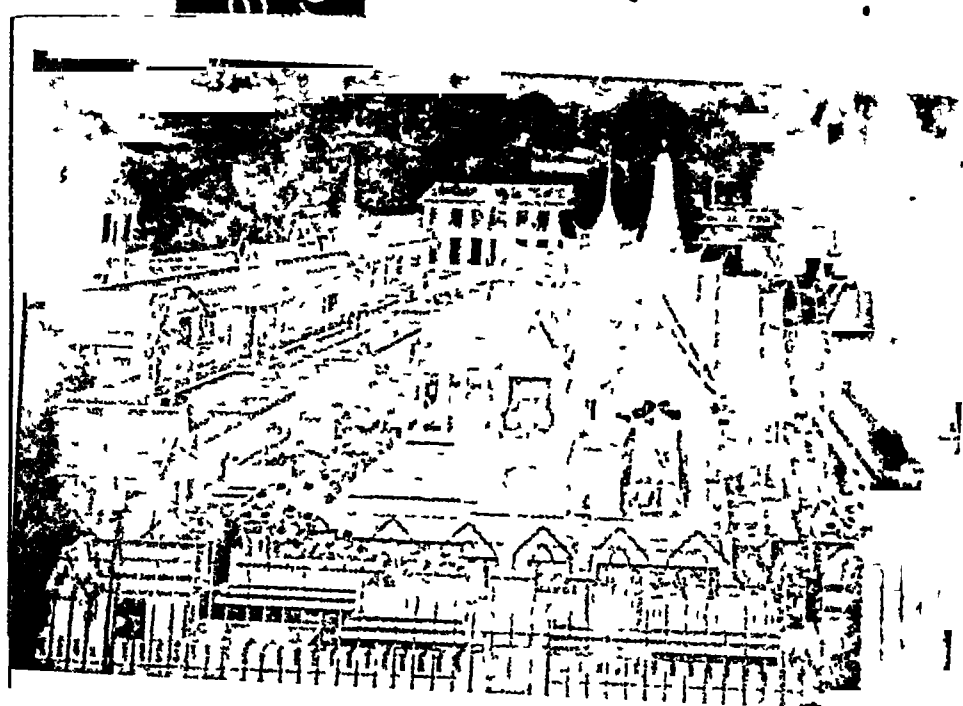
लका के महल मे हनुमान द्वारा उस पिजडे को नष्ट करना, जिसमे रावण का हृदय सुरक्षित था (पृष्ठ ११५)

लका विजय के उपरान्त राम का अयोध्या मे आगमन (पृष्ठ १२८)
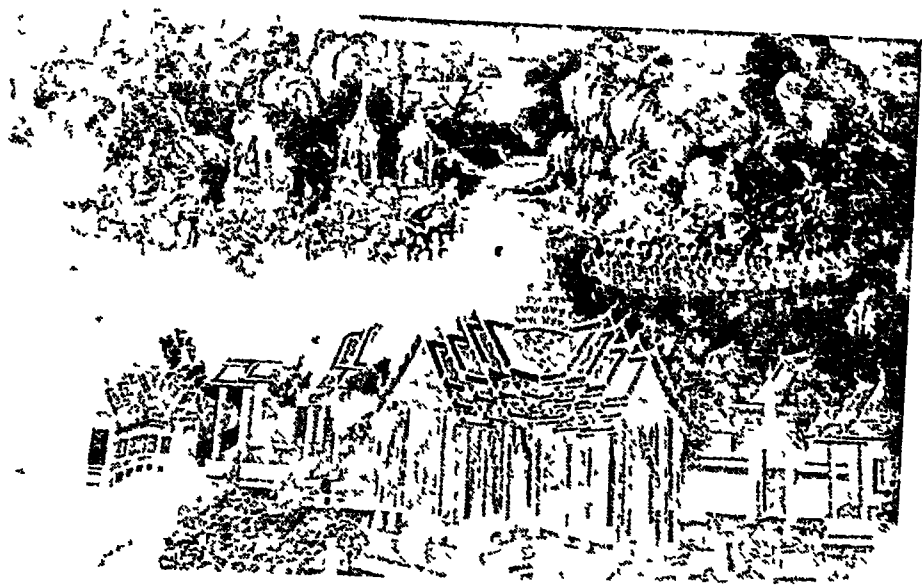
विजय के उपरान्त
राम द्वारा
पुरस्कार-वितरण
(पृष्ठ १३०)

हनुमान की राजधानी (पृष्ठ १३१)

रावण
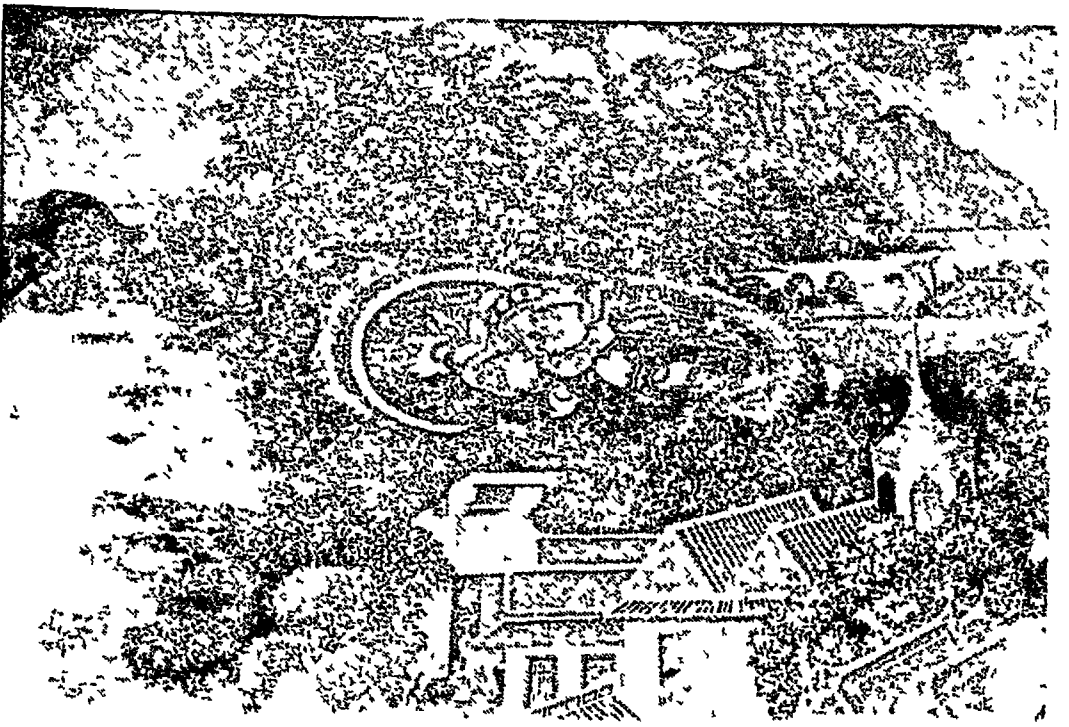
नील

हनुमान ने प्रलयकल्प का सामना किया। दशकंठ का यह पुत्र विपुलकाम था। हनुमान ने चाहा कि पहले इसको थका डालना चाहिए। फिर इसका मार डालना सुगम होगा। हनुमान भैंसा बन गये और कीचड़ में लोटने लगे। प्रलयकल्प उधर से निकला और भैंसे से पूछा कि राम और लक्ष्मण कहां हैं। भैंसे ने कहा, "पहले मुझे कीचड़ में से निकालो। मेरे प्राण बचे तब तो मैं बताऊं।" प्रलयकल्प ने बड़ी कठिनाई से भैंसे को कीचड़ में से निकाला और उसका शरीर थकावट से चूर-चूर हो गया।

हनुमान बोले, "अरे भाई राम-लक्ष्मण के क्यों पीछे पड़ते हो?" परन्तु राक्षस कब सुननेवाला था। अन्त में हनुमान ने अपना निजी बन्दर का रूप रक्खा और उससे युद्ध आरम्भ हो गया। बहुत देर तक लड़ाई होती रही। राक्षस थका हुआ तो था, परन्तु हारा नहीं। बात यह थी कि उसे वरदान था कि उसका शरीर चिकना हो जायगा और इससे वह किसीकी पकड़ में नहीं आयगा। परन्तु हनुमान तो घबराना जानते ही न थे। उन्होंने अपनी एक मायावी आकृति बनाई जो लड़ाई लड़ती रही और स्वयं परामर्श लेने एक ऋषि के पास दौड़ गये जिनका नाम दिशपई था। परन्तु ऋषि का यह धर्म नहीं है कि किसीको अन्य प्राणी की जान लेने का मार्ग बता दे। इसलिए ऋषि ने मुंह से तो कुछ नहीं कहा, परंतु इशारे से भूमि पर रेत फैला दी। चालाक बन्दर ने इशारा समझ लिया और लौटकर उस राक्षस के ऊपर रेत फेंकने लगे। इस प्रकार उसके शरीर की चिकनाहट कम हो गई। फिर तो हनुमान ने उसको जकड़कर पकड़ लिया और पितृगति को प्राप्त करा दिया।

इस बाधा से मुक्त होकर वे उन वनो को पार करने लगे जो समय-समय पर उनके आनन्द और दु.ख की घटनाओं का स्मरण दिलाते थे। वे खीद्खिन आये। यहा नीलबद् ने उनका हार्दिक स्वागत किया। यहां से वे सीधे अयोध्या को चले। मार्ग मे राम का भक्ति खुखन् मिला। वे सब अयोध्या ठीक ऐसे समय पहुंचे जबकि भरत और शत्रुद राम के पुनरागमन से निराश होकर आत्महत्या की योजना कर रहे थे।

समस्त नगर आनन्द से परिपूर्ण हो गया। प्रत्येक व्यक्ति हर्षित प्रतीत होता था। राम ऐसे लौटे जैसे रात के पीछे सूर्य भगवान का उदय होता है। अब राम का अभिषेक होगा और वह प्रजा पर राज करेंगे।

राम की विजय से उनका राज्य बडा विशाल हो गया था। राम ने अपने राज्य के भिन्न-भिन्न भागों को अपने भक्तो को बांट दिया। लक्ष्मण को उन्होने रोमगल प्रदेश का राजा बनाया जहां पहले खर राज करता था। भरत और शत्रुद को उन्होंने अपना युवराज बनाया। सुग्रीव को उन्होने खीद्खिन् का राज दिया और आज से उसका नाम 'फ्रया वैयवोङ्सा महासुरतेज रुअग्श्री'[1] हुआ। बिभेक लका का राजा हुआ। उसका नाम हुआ 'महाराज दशगिरिवोङ्स फोङ्सब्रह्मधिराज रग्सन्।'[2] अगद को 'फ्रया इन्द्रानुभाव'[3] के नाम से खीद्खिन् का युवराज बनाया गया। जम्बूवान् को पगताल का राज मिला और जम्बूकराज उसका युवराज बनाया गया। खुखन् को 'फ्रया खुखनधिपति'[4] की उपाधि और पुरीर का राज मिला। हनुमान को अयोध्या का

१. २ ३. ४. ये स्यामी नाम हैं।

शासक बनाया गया और उसकी पदवी हुई 'फ्रया अनुजित चक्रकृष्ण विबदनबोंड्स ।'[1]

परन्तु फ्रया अनुजित् के भाग्य में अयोध्या का राज नही था । यह तो नारायण के वशजों का राज था । ज्योंही वह गद्दी पर बैठा उसके शरीर में आग-सी लगने लगी और उसे ऐसा अनुभव हुआ कि उसके अगरक्षक भालों से उसके नेत्र छेदने आ रहे हैं । वह झट गद्दी से उतर पड़ा और जो वास्तविक अधिकारी थे उनको राज दे दिया ।

तब कृतज्ञ राम ने एक तीर मारा और अनुजित् को आज्ञा दी कि इसके मार्ग का पीछा करो । जहां तीर गिरे वही तुम अपनी राजधानी बना लो । तीर नौ चोटियोंवाले पहाड़ पर गिरा । पहाड़ चूर-चूर हो गया । अनुजित् ने पूंछ से उसको साफ किया और फिर राम के पास आया । राम ने विष्णुकर्मा को आज्ञा दी कि फ्रया अनुजित् के लिए एक नगर बसाओ । विष्णुकर्मा ने एक नगर बसाया, जिसका नाम नवपुरी हुआ और फ्रया अनुजित् उसके राजा हुए ।

राम उन सब राजाओं के महाराजा बने और उनके समस्त राज मे सुख और शान्ति स्थापित हो गई ।

: ३९ :

लंका में विद्रोह

एक दिन चक्रवाल के राजा महापाल देवसुर के मन मे आया कि अपने मित्र दशकठ से जाकर लका में भेंट कर

१. यह स्यामी नाम है ।

आवे । लका मे आने पर उसे ज्ञात हुआ कि दशकठ तो मृत्यु को प्राप्त हो चुका है । उसने विभेक को बुलाया, जो महाराज दशगिरिवश के नाम से राज कर रहा था । उसने देवसुर से मिलने से इन्कार कर दिया । इसपर चक्रवाल नरेश ने गुस्से मे आकर चढाई कर दी और लका के चारों ओर घेरा डाल दिया ।

दशगिरिवश महाराज मे कोई चमत्कार तो था नही । हा वह मात्र भविष्य को जान सकते थे । अतः यह निश्चित हुआ था कि राम हर सप्ताह एक तीर भेजा करेंगे और यदि कोई अनिष्ट हो तो राजा एक चिट्ठी लिखकर उस तीर मे बाध देगे । जब देवसुर ने चढाई की तो दशगिरिवश राम के तीर की प्रतीक्षा मे था । तीर आया और चिट्ठी के साथ चला गया । राम ने अनुजित् (हनुमान) को दशगिरिवश की सहायता के लिए भेजा ।

अनुजित् ने शत्रु का सामना किया और उसकी टांगे पकड-कर चीर डाला । परन्तु अचरज की बात कि दोनों भाग फिर जुड़ गये और राक्षस जी उठा । परन्तु विभेक के बताने पर अनुजित् ने उसका हृदय निकाल लिया और राक्षस मर गया । हनुमान अपने देश को लौट आये और चक्रवाल की गद्दी पर पौवनासुर को बिठाया गया ।

इस विपत्ति के बाद कुछ दिन सुख से गुजरे । लेकिन दशगिरिवश के ऊपर एक और विपत्ति आ पडी । लका मे विद्रोह हो गया और राजा को पकड लिया गया । बात यह हुई कि मण्डो विभेक की रानी हुई तो उस समय वह गर्भवती थी । उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम वैणासुरिवंश

रक्खा गया। पिता की जानकारी के बिना ही पुत्र का पालन होता रहा। जब वह बड़ा हुआ तो उसके अध्यापक वरणीसुर ने उसको उसके पिता का इतिहास बताया। इससे उसे बड़ा क्रोध आया और उसके जी में बदला लेने की तीव्र उत्कंठा जागृति हुई। मण्डो ने उसे बहुत समझाया कि ऐसा करने से बडी हानि होगी, परन्तु लड़के ने एक न सुनी।

बैणासुरिवंश और वरणीसुर दोनों राक्षस मलिवन के राजा चक्रवर्ती के पास पहुचे। वह दशकठ का मित्र था। परन्तु उस नगर के चारों ओर दो खाइया थी; एक अग्नि-मृत्यु की और दूसरी जल-मृत्यु की। इन दोनों को पार करके जाना कठिन था। परन्तु उन्होने एक ऋषि से कुछ वैदिक मन्त्र पढ़े थे जिनके प्रभाव से आग बुझ गई और पानी को रेत से पाटकर वे भीतर घुस गये।

मलिवन के राजा ने अपने मित्र के पुत्र के साथ अपने पुत्र का-सा व्यवहार किया और एक बड़ी सेना लेकर लका पर चढाई कर दी, बिभेक को कैद कर लिया और बैणसुरि-वंश को लंका का राजा बना दिया।

हनुमान का लड़का असुरफद् जो, बेन्चकाय के पेट से उत्पन्न हुआ था, किसी प्रकार लंका से निकल भागा और अपने पिता के पास सहायता के लिए जा पहुचा। उसने सुन रक्खा था कि उसके पिता किसी पर्वत पर तपस्या कर रहे हैं।

फया अनुजित् (हनुमान) ने अपनी एक भूल के प्रायश्चित्त स्वरूप संन्यास ले लिया था। वह कथा इस प्रकार है :

एक बार हनुमान जंगल में जा रहे थे। उनकी दृष्टि

मीठे-मीठे सुन्दर आमो पर पडी जो वृक्षो मे लटक रहे थे। हनुमान झट वृक्ष पर चढ गये और आमो को तोड़ना आरभ कर दिया। परन्तु ऐसा करने मे आमो का चेप उनके सिर पर लग गया। उन्होने अपने हाथो से चेप छुडाना चाहा, परन्तु सफल नही हुए, वे बन्दर तो जन्म के ही थे। अब उन्होने हाथो और पैरो दोनो से युद्ध करना शुरू किया। हनुमान की स्त्रिया उनको ऐसा करते देखकर ठट्ठा मारकर हँस पड़ी। हनुमान ने समझा कि इन्होने ऐसा करके उनका अपमान किया है। इस अपमान को धोने के लिए उन्होने सन्यास लेने की ठान ली।

वह सन्यास लेने के लिए ऋषि दिशफई के पास गये। परन्तु बन्दर को सन्यास देना कहा लिखा है? इसलिए उन्होने मनुष्य का रूप धारण किया और पहाड पर रहकर तपस्या करने लगे।

असुरफद् ढू ढते-ढू ढते उनके पास पहुचा। परन्तु वहा बन्दर तो कोई नही मिला। एक आदमी मिला। असुरफद् ने पूछा, "हनुमान कहा है?" जब उसको मालूम हुआ कि यही हनुमान हैं तो उसको क्रोध आया कि यह दुर्बल मनुष्य मेरा बाप नही हो सकता। उसके मुख मे तो सूर्य और चन्द्र चमकने लगते थे। हनुमान को अपने पुत्र मे इस प्रकार का आत्म-गौरव देखकर प्रसन्नता हुई। वह फिर बन्दर बन गये और सूर्य-चन्द्र तथा और नक्षत्रो को अपने मुख मे दिखाकर पुत्र को सन्तुष्ट कर दिया। असुरफद ने महाराज दशगिरिवश की दुर्दशा का समाचार सुनाया। वे दोनो खीद्खिन् गये। वहा से सेना इकट्ठी की और अयोध्या आये। भरत और

शत्रुद ने उनका साथ दिया और उन्होने लका पर चढाई कर दी। इस समय पुल बांधने की आवश्यकता नही हुई। नीलवद् ने अपना शरीर इतना बढाया कि सागर पट गया और सेना उसके ऊपर होकर निकल गई। सन्धि की बातचीत की गई, परन्तु उससे काम न चला। लंका की हरी-भरी भूमि फिर रक्त-रंजित हो गई। वैणासुरिवश मारा गया और विभेक मुक्त हो गये। अब विजयी सेना ने मलिवन पर चढाई की और उसको घेर लिया।

राजा ने युद्ध किया, परन्तु उसकी भी वही गति हुई जो उसके मित्र दशकंठ की हुई थी। उसके तीन पुत्र एक-एक करके मारे गये। सुरियाभव और प्रलयचक्र को भरत ने मार डाला और नन्यवक्तृ को शत्रुद ने। उसका मित्र वैताल, जो कुरुराष्ट्र का राजा था, नीलबद् के हाथ से हत हुआ। अन्त में भरत के ब्रह्मास्त्र छोड़ने पर चक्रवर्ती का भी अन्त हो गया।

मलिवन की गद्दी खाली हो गई। उसपर मच्छानु को बिठाया गया। राम ने मच्छानु की पूंछ काट ली थी और उसका नाम हनुराज रख दिया था। चक्रवर्ती की पुत्री रत्नमाली से उसका विवाह कर दिया गया। नीलवद् को भी मुंह मांगा पुरस्कार मिला। उसको जम्बू का युवराज बनाकर उसका नाम फया अभयवद्वंग रक्खा गया। दूसरे सेनापतियों जैसे हनुमान के पुत्र असुरफद, इन्द्रजित के लड़के कन्युवेक और मलिवन को भी पुष्कल इनाम दिये गए, क्योंकि इन्होंने युद्ध मे बड़ी सहायता की थी। अब एक बार फिर युद्ध शांत हो गया और राम के विशाल झंडे के नीचे जितने प्रदेश थे वे सब सुख का जीवन व्यतीत करने लगे।

सीता-बनवास

विपत्ति के दिन बीत गये। निर्विघ्न आनन्द का समय आया। परन्तु भाग्य तो क्षण-क्षण मे बदलता है। कभी तो आनन्द-ही-आनन्द होता है और कभी दुर्दैव का ऐसा कोप होता है कि प्राणी कही का नही रहता। किसीके भाग्य मे फूलो की शैया है तो किसीके भाग्य मे काटो की। भाग्य सब प्राणियो के साथ इसी प्रकार के खेल खेलता रहता है और सीता के साथ भी उसका व्यवहार इसी प्रकार का हुआ।

उस समय अयोध्या के भाग्य का नक्षत्र उदय पर था और सीता का भी। सीता को अपार हर्ष था कि मैं राक्षसों के पजे से छूटकर अब अपने प्राण-प्यारे वीर राम के समीप हू। एक कारण इस हर्ष का और भी था। वह गर्भवती थी और उसे आशा थी कि मेरे उदर से एक ऐसे तेजस्वी पुत्र का जन्म होगा जो अयोध्या का भावी राजा होगा। ऐसी भावना ने सीता के आनन्द को दुगुना कर दिया और वह समझने लगी कि अब मेरे बराबर कौन है ?

परन्तु हा ! यह तो भाग्य का खेल मात्र ही था। थोड़ी ही देर मे वह सब दु ख मे परिणत हो गया। सीता को फिर दु.ख-सागर मे गोता लगाना पडा।

घटना इस प्रकार घटी कि सम्मनखा की बेटी अतुल इस

प्रतीक्षा मे थी कि किसी प्रकार अपने सम्वन्धियों के खून का वदला लिया जाय। उसके हाथ मे यह तो था नही कि शस्त्र धारण करके समक्ष में लड़ने आती। उसने सोचा कि किसी प्रकार सीता और राम मे वैमनस्य करा देना चाहिए। उसे एक अवसर मिल ही गया।

राम एक बार सैर को बन मे गये और सीता अकेली रह गई। अपने पति की अनुपस्थिति मे महल मे उसका जी न लगा और वह नदी के शीतल जल में आनन्द मनाने चली गई।

राक्षसी को समय मिल गया। उसने महल की दासियों का रूप रख लिया और सीता की सेवा के लिए आ उपस्थित हुई। सीता को कुछ सन्देह नही हुआ और वह उसकी सेवा लेने लगी।

दासी का झूठा भेस वनाये हुए अतुल ने एक दिन धोखे मे सीता से पूछा, "सीते! वताओ तो सही कि दशकठ कैसा लगता था?" सीता विचारी को दासी के छल का पता न था। उसने स्लेट पर दशकठ का चित्र खीच दिया। इस चित्र का खिचना था कि दासी लोप हो गई और उस चित्र में समा गई। राम अचानक उसी समय सीता के भवन में आ पहुंचे। घवराहट मे सीता ने दशकठ का चित्र मिटाना चाहा। परन्तु जितना ही मिटाती थी उतना ही चित्र अधिक चमकता जाता था। अन्त में हारकर सीता ने स्लेट को अपने तकिये के नीचे छिपा दिया।

राम जो पलंग पर लेटे तो उन्हे वहुत गर्मी मालूम होने लगी। वात यह थी कि छिपी हुई अतुल स्लेट के द्वारा भीतर

से आग जला रही थी । राम ने बहुत चाहा कि अपनेको शात करे । ऐसा प्रतीत हुआ मानो नीचे से अगारे उठकर उनको जला रहे हैं । अब उन्होंने लक्ष्मण को बुलाया और वह सारे कमरे-भर मे उस कारण की तलाश करने लगे, जिसने इतनी गर्मी उत्पन्न कर दी थी । ऐसा करते हुए उनको इस स्लेट का पता लगा ।

राम को आश्चर्य हुआ कि इस हत्यारे का चित्र किसने बनाया ? उनका आश्चर्य और भी बढा जब सीता ने राम से सच-सच कह दिया कि यह चित्र मैंने बनाया है ।

सीता का वचन सुनते ही राम को बडा आघात पहुंचा । क्या सीता दशकठ से प्रेम करती थी ? क्या इसी असती पत्नी के लिए मैंने और मेरे मित्रों ने इतने दु.ख झेले ? क्या यही मक्कार स्त्री मेरी सहधर्मिणी बनी है ? राम दु ख के मारे कोप से भर गये और लक्ष्मण को आदेश दिया कि अभी ले जाओ इसे और मारकर इसका कलेजा मेरे सामने हाजिर करो । अयोध्या के भावी राजा की माता ने राम को समझाने का बहुत प्रयत्न किया कि वास्तव मे बात क्या है, परन्तु राम ने एक न सुनी । उनको विश्वास न हुआ और अपने आदेश मे परिवर्तन करना स्वीकार नही किया ।

लक्ष्मण को सीता पर सन्देह नही था । परन्तु वह करते क्या ? राजा की आज्ञा तो माननी ही थी । वह सीता को वन को ले चले । दु खी सीता रोती हुई लक्ष्मण के साथ-साथ चली गई ।

चलते-चलते वह एक भारी वृक्ष के नीचे आये । उस वृक्ष की शीतल छाया के नीचे सीता बैठ गई और लक्ष्मण से

बोली कि अच्छा अब उसके पति की आज्ञा को पूर्ण किया जाय। मारनेवाला भी कौन था ? वही लक्ष्मण जो सीता को अपने भाई से भी अधिक प्रिय था। परन्तु उसे सन्तोष था कि मरने से पूर्व भाई लक्ष्मण के तो दर्शन मिल ही जायेंगे।

वह बोली, "प्यारे भाई लक्ष्मण, मैंने सदा तुम्हारे साथ परमप्रिय भाई का-सा व्यवहार किया था और तुमने मुझे बहन के समान समझा था। क्लेश भोगने में हम दोनों का साथ रहा। हाय ! अब हम दोनो कभी एक दूसरे को स्नेह की दृष्टि से न देख सकेंगे। मुझे मौत का दण्ड केवल एक तुच्छ चित्र खीचने पर ही मिल रहा है। पर मेरी मृत्यु के बाद कभी तो सच्चाई खुलेगी। पर अब तो निर्दोष होने का प्रमाण देने के लिए मर जाना ही अच्छा है। हे लक्ष्मण ! तुम इतनी तेजी से तलवार चलाओ कि जीवन की गांठ प्रेम के बन्धन से एकदम खुल जाय।"

लक्ष्मण का हृदय दुःख से विदीर्ण हो गया। "मैंने जिसको सदा प्रेममयी बहन की दृष्टि से देखा उसपर मैं तलवार कैसे चलाऊं ? और अयोध्या के राजवंश को कायम रखनेवाला महापुरुष भी तो है इसके पेट में। इसलिए भी इसको मार डालना घोर पाप होगा। फिर इस सबके अतिरिक्त बड़ी भारी बात यह है कि सीता निरपराध है। निरपराधी को मारना तो महादोष है।" लक्ष्मण सोचने लगे।

सीता ने देखा कि लक्ष्मण हिचकिचा रहे है, तो उसे दुःख हुआ। उसने समझा कि लक्ष्मण का साहस जवाब दे रहा है कि एक निरपराध प्राणी की हत्या कैसे की जाय ?

परन्तु अब तो सीता के लिए जीवन का स्वाद चला ही गया था, वह मरना ही चाहती थी। अत उसने चाहा कि किसी प्रकार लक्ष्मण के क्रोध को भडका दे, जिससे वह शीघ्र ही उसका अन्त करदे। ऐसा करने के लिए वह लक्ष्मण पर अनेक झूठे आरोप लगाने लगी।

"अरे लक्ष्मण! तुम तो अपने भाई की आज्ञा पालन के लिए आये हो। अब हिचकने से क्या होता है? क्या तुम्हारे मन मे कोई अनिष्ट प्रयोजन हैं, जो मुझे बन मे अकेले पाकर पूरा करना चाहते हो? बोलो, मैं तो इस समय तुम्हारे चगुल मे हूं। मीठे-मीठे शब्द कहकर क्या मुझे फुसलाना चाहते हो?

लक्ष्मण ने ये अन्यायपूर्ण शब्द सुने तो उनके शरीर मे आग-सी लग गई। परन्तु इसमे कुछ थोडी-बहुत सच्चाई भी तो थी। लोग उसको निर्दोष नही कहेगे। अकेली स्त्री को अकेले सुनसान बन मे ले जाने से सभीको तो शका हो सकती है। और लक्ष्मण पर लोग व्यभिचार का दोष आरोपित कर सकते हैं। अतः उसने और ज्यादा न सोचकर तलवार उठाई, परतु दया के भाव ने उसके हाथ को कपा दिया और तलवार हाथ से छूट गई।

हृदय को कडा करके उसने एक बार फिर तलवार उठाई। निरपराधिनी सीता अपना तेजस्वी रूप धारण किये हुए मृत्यु का आलिगन करने के लिए बैठी थी और सामने उसका घातक अपने पापमय कृत्य को करने के लिए खडा था। लेकिन दया और अनुताप ने उसपर फिर विजय पाई और तलवार फिर उसके हाथ से गिर पडी।

लक्ष्मण को अपनी आखो पर बड़ा क्रोध आया। इन्हीं

आखों ने उसके हृदय में दया और अनुताप का भाव उत्पन्न किया है। उसने अपनी आंखे बन्द करली और सीता की गर्दन पर तलवार से वार कर ही दिया। परन्तु साथ ही वह वही बेहोश होकर गिर पडा। लक्ष्मण की तलवार ने जीवन-भर किसी निरपराधी का रक्त नही पिया था। आज वह ऐसे दुर्व्यवहार की भागी भला कैसे होती ? वह तलवार जो सीता की गर्दन पर गिरी तो वज्र होकर नहीं, बल्कि फूलो की माला के रूप में। यह सीता के सतीत्व का चमत्कार था कि खड्ग भी फूल बन गया।

सीता ने लक्ष्मण को वेहोश पड़ा देखा। उसे अपार दुःख हुआ और वह भी वेहोश होकर गिर पड़ी। थोडी देर में उसकी आंखे खुली तो देखा कि लक्ष्मण अब भी चेतनाशून्य पड़े हैं। जीवन का कोई चिह्न दिखाई नहीं पड़ता था। दुःखी होकर उसने देवों से प्रार्थना की कि लक्ष्मण जी उठे। उसकी टेर सुनी गई और लक्ष्मण के मुरझाये मुख का रंग बदला। उन्होंने अंगड़ाई ली और आंखे खोल दी।

वह देखता क्या है कि सीता अभी जीवित है। उसको यह देखकर बहुत ही आनन्द हुआ कि निर्दोषता ने पाप पर विजय पाई। सच्च ने झूठ का मुह काला कर दिया। वह उठा और देवों से सीता की रक्षा करने के लिए प्रार्थना करके दुःखी हृदय से अयोध्या की राह ली।

परन्तु सीता को केवल वह शरीर से छोड़ रहा था। उसका मन तो सीता के ही चारों ओर चक्कर लगा रहा था। हाय ! सीता सुनसान वन में अकेली है। वन के भयानक पशु उसको हानि पहुंचायेगे और लक्ष्मण का हाथ

उसकी रक्षा के लिए न उठ सकेगा। वर्षा की धारे उसके कोमल शरीर को भिगो देगी और सूर्य की तीक्ष्ण किरणे उस के गोरे मुख को झुलसा देगी। जब वह रक्षा के लिए इधर-उधर देखेगी तो सुनसान वन के अतिरिक्त उसको और कोई सहायक दिखाई न देगा। जब चलते-चलते उसकी टांगे आगे चलना बन्द कर देगी तो उसको कठोर भूमि के अतिरिक्त और कोई चीज विश्राम के लिए न मिल सकेगी। अरे इसके पेट में तो नारायण का ओजस्वी वशज है। क्या यह महलो मे उत्पन्न न होकर जगलो मे जन्म लेगा? इन विचारो ने लक्ष्मण को शोकातुर कर दिया। उसकी टागो ने जवाब दे दिया और वह किसी प्रकार घसिटता-घसिटता अयोध्या मे प्रविष्ट हुआ।

परन्तु यहा एक और विपत्ति थी। यदि सीता का कलेजा न लाया तो उसका क्या परिणाम होगा? तब इन्द्र को लक्ष्मण पर दया आई। उसने माया से रेत के मैदानपर एक मरा हिरण डाल दिया। लक्ष्मण की निगाह उसपर पडी। उसने हिरण का कलेजा निकाल लिया और राम को यह दुखदायी सूचना देने चल पडा कि सीता को प्राणदड दे दिया गया। राम ने उसको देखा और उनके मुंह से केवल इतना ही निकला, "ओहो! सीता का हृदय भी पशु-जैसा ही है।"[1]

---

१. सीता-बनवास की यह कहानी बगाली रामायण से अधिक मिलती है।

मङ्कुट और लव की उत्पत्ति

सीता वन मे अकेली रह गई । दु.ख के मारे उसका हृदय उमड़ पड़ा । उसने अपने पति की दया के लिए बहुत आंसू बहाये, परन्तु उसका कोई फल नही निकला । वह इतना रोई कि स्वर्ग के अध्यक्ष को भी दया आगई, उन्होंने एक भैंसे का रूप धारण किया और उसके सामने आगये । भैंसे ने आंखों से मूक इशारा किया कि उसके साथ-साथ आओ । सीता उसके पीछे हो ली और वजमृग ऋषि की कुटिया मे पहुंच गई ।

दयालु ऋषि ने पितृवत् स्नेह किया और अपनी कुटिया में उसे स्थान दिया । वहां उसे आराम से रखा । अयोध्या के भावी नरेश का जन्म वही हुआ । इन्द्र की पत्नियां स्वयं स्वर्ग से नीचे आई और अयोध्या के भावी अधिपति के जन्म मे धाय का काम करने लगी ।

ऋषि ने बालक का नाम मङ्कुट रक्खा । सीता के अन्धकारमय जीवन मे यह पुत्र ही एकमात्र प्रकाश की किरण था । पुत्र के मुख पर उसके पति के सभी चिह्न थे, जिनको देखकर उसका कलेजा दो टूक हुआ जाता था । इतने बड़े साम्राज्य का युवराज और उसका जन्म एक सुनसान वृक्ष के नीचे । कोई पिता नही जो उस पुत्र के जन्म पर हर्ष प्रकट कर सके । कोई दासी नहीं जो लोरियां देकर बच्चे को सुला

सके । एक सम्राट् का बालक और एक दुखिया दरिद्र माता की गोद मे । रोते-रोते सीता ने अपनी अगुली से अगूठी उतारी और बच्चे की अगुली मे पहना दी । उसके पास यही तो एक सम्पत्ति बची थी ।

एक दिन सीता बच्चे को ऋषि के सरक्षण मे छोड़कर नदी मे स्नान करने गई । ऋषि उस समय ध्यान मे थे । वहां उसने देखा कि बदरिया अपने बच्चो को गले से चिपटाये एक वृक्ष से एक दूसरे वृक्ष पर छलागे मार रही हैं । उसे डर लगा कि यदि कोई बच्चा ऊपर से छूट पडे तो मर ही जाय । इसलिए वह बदरियो को ताडने लगी कि अरे तुम ऐसी असावधानी से कूदती हो । तुमको अपने बच्चों का ध्यान नही है । बदरियो ने उत्तर दिया," अरे तुम तो हमसे भी अधिक असावधान हो । तुमने तो अपने बच्चे को उस ऋषि की देखभाल मे छोड दिया है, जो समाधि लगाये बैठा है और उसे ससार की कुछ भी खबर नही है । जब मा नही तो बच्चे को कौन देखेगा ? अरे हम बदर लोग तो अपने बच्चे को अपनी आंख के सामने ही रखते हैं ।"

सीता पर इस उत्तर का इतना प्रभाव पड़ा कि वह शीघ्र ही वहा से चल पडी कि मैं भी बच्चे को उठा लाऊं ।

इसी बीच ऋषि की समाधि टूटी । उन्होने इधर-उधर देखा तो बच्चे का पता न था । बच्चे को कौन ले गया ? अवश्य ही कोई दुर्घटना हो गई । हाय! अब क्या होगा? सीता इसे कैसे सह सकेगी ? अभी तो पति के वियोग का ही रोना था । अब पुत्र का भी वियोग ! ऋषि दया के भाव से आर्द्रित हो गये । उन्होने सीता को दु:ख से बचाने का उपाय सोचा ।

उन्होंने अपने तप से एक और बच्चा बना कर विस्तर पर सुलाना चाहा । परन्तु ऐसा करने के लिए आवश्यक था कि वह स्लेट पर पहले बच्चे की आकृति बनाते । जब वह ऐसा कर ही रहे थे कि सीता मङ्कुट को गोद मे लिये वही आ गई । ऋषि को सतोष हुआ । पर सीता ने, चाहा कि यह चित्र भी बना ही दो । यह भी मेरे बच्चे के साथ खेला करेगा । इस प्रकार ऋषि ने अपने तप के बल से एक दूसरा बच्चा बनाकर उसमें प्राण डाल दिये । इस प्रकार सीता दो पुत्रों की माता बन गई। दूसरे पुत्र का नाम लव रक्खा गया । दोनों बच्चे धीरे-धीरे बढने लगे और जब वे किलकारियां मारते तो सुनसान जगल मे ऋषि की कुटिया मे रहनेवाली दुखिया सीता के जीवन में क्षण-भर आनन्द का उल्लास हो उठता ।

: ४२ :

रामाश्वमेघ

समय बीतते देर नही लगती । लडके दस वर्ष के हो गये थे । परन्तु तेजस्विता और वीरता मे वे बड़े सूरमाओं से भी बढ गये थे । एक दिन माता की आज्ञा से वे बन में घूम-फिर रहे थे । वहां उन्होंने रग-वृक्ष देखा जिसकी ऊची शाखाएं हरे-भरे वन के ऊपर फैल रही थी । मङ्कुट ने अपना धनुष लिया और निशाना आजमाने के लिए वृक्ष की चोटी पर तीर छोड़ दिया । तीर विद्युत् के वेग से चला और वृक्ष के दो

टुकडे हो गये। और वृक्ष जोर की आवाज करता हुआ भूमि पर गिरा। उसका धमाका इतनी जोर का हुआ मानो भूकम्प आ गया हो। धमाके की आवाज अयोध्या मे राम के कान तक पहुंची। अरे ! नारायण तो अभी अपने नर रूप में ही लीला कर रहे हैं। यह इतना तूफान उठानेवाला दूसरा कौन उत्पन्न हो गया ? क्या कोई मेरा स्थान लेने वाला पैदा हो गया। ऐसे का तो पता लगाना चाहिए कि जिससे उसका दमन किया जा सके।

ऐसा विचार करके राम ने निश्चय किया कि अश्वमेध-यज्ञ रचाया जाय। एक श्वेतवर्ण घोड़ा लाया गया, जिसका चेहरा काला और मुह और टांगें लाल थी। उसके गले से एक तख्ती बाध दी गई कि जो कोई इस घोडे पर सवारी करेगा वह विद्रोही समझा जायगा और उसको उचित दड दिया जायगा। फ्रया अनुजित्, (हनुमान), भरत तथा शत्रुद उसके साथ किये गए।

घोडा देश देशान्तरो और वन-वनान्तरो मे फिरता रहा। दैवसयोग से घोडा चरते-चरते वहा आ पहुंचा जहा उस भूकम्प को उत्पन्न करनेवाले राजकुमार खेल रहे थे।

मङ्कुट ने तख्ती पढी और तुरन्त समझ लिया कि घोड़े को किसने और किस आयोजन से छोडा है। वीर पिता के वीर पुत्र ने उस लेख को पढा और हसकर कहा कि कैसा धृष्टता पूर्ण लेख है। इतना कहकर दोनो भाइयों ने घोड़े को पकड लिया और उसपर सवारी करने के लिए उसे अपने घर ले चले। पर फ्रया अनुजित लडको के इस लड़कपन को देख रहे थे। वह इस उद्दडता को सहन न कर सके। वह तुरन्त

आये और मार्ग रोक कर खड़े हो गये। परन्तु मङ्कुट के एक ही बाण ने उसको धराशायी कर दिया।

परन्तु क्षण भर में ही वह वापस होश मे आगये और एक छोटे बन्दर का रूप धरकर लड़कों के पास गये। परन्तु यों भी उनको सफलता न हुई। मङ्कुट ने चाहा कि बन्दर को मार डाले। परन्तु लव ने देखा कि इस बन्दर के शरीर पर तो कपड़े हैं। ऐसा मालूम होता है कि यह किसीका पालतू बन्दर है। अत उन्होने यह शाप देकर वन्दर को बांध दिया कि जब इस बन्दर का असली मालिक आयेगा तभी यह बन्धन छूट सकेगा।

फ्या अनुजित अपने को जब इस विचित्र विपत्ति में जकडा पाया तो उन्होने तथा भरत और शत्रुद ने वहुतेरा चाहा कि बन्धन कट जायं। परन्तु वे तो बड़े दृढ थे। क्या इन बन्धनों को खोलने के लिए राम के पास अयोध्या जाना पडेगा ? परन्तु अयोध्या जाये तो कैसे ? वायु-मार्ग से जाय तो देवता हसी करेगे ? भूमि-मार्ग से जाय तो मनुष्यो में तिरस्कार होगा। परन्तु कुछ तो करना ही होगा। या अपमान सहो या अनन्तकाल तक बधे पडे रहो। अनन्त बन्धन से तो अपमान ही अच्छा। विचारे हनुमान को अयोध्या आना पड़ा और वहां उनके मालिक राम ने उनके बन्धन काटे। परन्तु राम को इस धृष्टता पर बड़ा क्रोध आया। उन्होंने आज्ञा दी कि भरत, शत्रुद और अनुजित के साथ बहुत बडी सेना भेजी जाय जो इन दोनों उद्दंड लड़कों को पकड़ लावे।

घोर युद्ध हुआ। भरत के तीर से मङ्कुट आहत होकर गिर पड़ा और लव भाग कर माता की कुटिया में पहुचा।

मङ्कुट को कैद करके भरत और शत्रुद अयोध्या ले आये कि राम की आज्ञा लेकर उसका सिर काट दिया जाय।

उधर लव ने मा से अपने भाई का हाल कहा। सीता के पास एक मायावी अगूठी थी, जिससे कडे-से-कड़े बन्धन खुल सकते थे। सीता ने लव को वह अगूठी दी और लव उसे लेकर अयोध्या को चल पडे।

नगर मे उन्होने एक स्वर्ण की अप्सरा देखी जो मनुष्य के रूप मे मङ्कुट के लिए पानी भर रही थी। लव ने कहा कि तू क्यो कष्ट करती है। मैं पानी भरे देता हूँ। पानी भरते समय लव ने वह अगूठी घडे मे डाल दी।

मङ्कुट के पास अगूठी का पहुचना था कि उसके बन्धन खुल गये। दोनो भाई वन मे वापस चले आये और सेना की ताक मे बैठे।

जब राम ने सुना कि कैदी भाग गया तो बडी सेना लेकर स्वय वन की ओर बढे और मङ्कुट का पीछा किया। बाप-बेटो मे घोर युद्ध हुआ। परन्तु न तो पिता के तीर को पुत्र का रक्त चूसना बदा था और न पुत्र के तीर को पिता का। जो तीर छूटते थे वे ऊपर-ही-ऊपर निकल जाते थे। पुत्रो के तीरो मे यह गुण था कि वे फूल होकर पिता के चरणो मे गिर पडते थे।

चकित होकर राम को यह जानने की उत्कठा हुई कि इन पुत्रो का पिता कौन है। जब उन्होने सुना कि यह सीता के पुत्र हैं। तो उनको बडा कौतुक हुआ। क्या सीता को लक्ष्मण ने मारा नही था ? तब लक्ष्मण ने राम को पूरी कहानी ज्यो-की-त्यो की सुना दी। राम को यह जानकर बड़ा

हर्ष हुआ कि उसकी महारानी सीता का हृदय इतना पवित्र था।

वे दोनों पुत्रो को लेकर कुटिया पर आये जहा सीता अपने पुत्रोंकी प्रतीक्षा में बैठी हुई थी। उन्होंने सीता कोपहली बार देखा। ऐसा प्रतीत होता था मानो बादलो मे चन्द्रमा अस्त हुआ चाहता है। परन्तु जब सीता को मालूम हुआ कि लड़को के साथ राम भी हैं तो उसे बड़ा क्रोध आ गया। वह अपने पति की इस घृष्टता को सहन नही कर सकी। अरे इन्होंने मेरे जीवन को तो मिट्टी मे मिला दिया। अब यह मेरे पुत्रो के भी पीछे पड़े हैं।

राम ने क्षमा मागी और महलो मे लौट चलने के लिए निवेदन किया। परन्तु सीता तो राम की ऐसी दया से पहले ही थकी बैठी थी। उसने जाने से इन्कार कर दिया। "अब किस मुंह से मुझे ले जाओगे? तुमने तो मेरी बात का विश्वास ही नही किया था। लंका में तो मैं पहरे मे थी। तब भी तुम को सन्देह हो गया। जगल मे तो मै अकेली दस साल से रहती हू क्या मेरे ऊपर सदेह करने के लिए अब पहले से भी ज्यादा प्रबल कारण नही है? अब तुम मुझको अपनी पत्नी के रूप मे कैसे स्वीकार कर सकते हो?"

राम के पास उसका उत्तर ही क्या था? उन्होने तो इतना ही कहा, "अगर तुम मेरे साथ चलने को तैय्यार नही हो तो फिर मुझे यही मार दो।" परन्तु सीता ने एक न सुनी, क्या मैं तुम्हारे समान निर्दयी हूं, जिन्होने अपनी प्यारी पत्नी को मारने का हुक्म दे डाला हैं।

जब सीता ने कोई प्रस्ताव ही स्वीकार नही किया तो

राम ने लडको से कहा कि वे अयोध्या चले। वहा उनका राजकुमारोचित शिक्षा का प्रवन्ध कर दिया जायगा। पर इससे तो सीता को और भी ज्यादा दुख हुआ। वह वन मे फिर अकेली रह जायगी। परन्तु प्रेम होते हुए भी सीता मे इतना मोह नही था कि अपने सुख के हेतु अपने वच्चो के भावी को नष्ट कर देती। दिल कडा करके और आंखो मे आसू भर कर उसने अपने पुत्रो को आज्ञा दी कि "जाओ और अपने वश के अवतस वनो।"

: ४३ :

सीता का पाताल-प्रवेश

राम दोनो पुत्रो के साथ अयोध्या आये। उनका मार्ग वन मे हो कर था। यात्रा बहुत दुख पूर्ण थी। वे आगे चलते थे और उनके पैर सीता के वियोग मे पीछे पडते थे। वन मे सैकडो वस्तुएं थी जो राम को अपनी पत्नी की और राजकुमारो को अपनी माता की याद दिलाती थी। एक चिडिया को देखा जो अपने बच्चो को उसी प्रकार चुग्गा दे रही थी जैसे सीता अपने बालको को भोजन दिया करती थी। बालकों ने चिडिया को देखा और वह दिन याद आ गया जब वह अपनी माता की गोद मे बैठकर खाना खाया करते थे। एक समुद्री चिडिया उडी और झट समुद्र के दूसरे तट पर पहुच गई। राम ने आह भरी, "अरे आज मेरी प्यारी सीता के और मेरे वीच मे भी एक अथाह समुद्र है। क्या कभी इसको पार कर सकूंगा ?"

सीता के विपय में इस प्रकार सोचते-सोचते वे अन्त को अयोघ्या पहुचे। वहां उनका बडे समारोह से स्वागत हुआ।

मङ्कुट और लव पर उनकी दादियो का, इतना स्नेह हुआ कि उनके दिन सुख से कटने लगे। परन्तु उनके हृदयों में अपनी दुखिया माता के लिए एक हूक-सी उठा करती थी। अन्त में उसको इतना दुख हुआ कि अयोध्या के राज महल उनके लिए कष्टप्रद हो गये। अत अपने पिता से विदा लेकर वे अपनी माता के पास बन मे चले आये।

राम ने अपने पुत्रों द्वारा सीता से कहला भेजा कि यदि सीता न आई तो वह रो-रो कर मर जायेगा।

सीता ने सुना और इतना ही उत्तर दिया कि यदि कभी यह दुर्घटना घटी तो वह उनके शरीर का अंतिम दर्शन करने चली आयगी।

दुखी हृदय से लडके अयोध्या को लौटे और सीता का उत्तर सुनाया। राम को सीता के इस कठोर उत्तर को सुन-कर कई दिन नीद नही आई। अन्त में क्रया अनुजित् से मिलकर सीता को वापस लाने की एक चाल चली गई।

क्रया अनुजित् सीता के पास गये और झूठ-मूठ कहा कि राम का तो शरीरान्त हो गया। सीता को बड़ा आघात लगा। वह यह कहने लगी—"क्या राम सचमुच मर गये? क्या राम सचमुच मर गये? क्या मेरे पति अब जीवित नही है?" मृत्यु के बाद तो लोग सारी शिकायते भूल जाते हैं। उस समय तो मृतक के गुण-ही-गुण याद रहते हैं। राम की मृत्यु की खबर सुनकर सीता अपनी सारी शिकायतों को भूल गई। उसे इतना ही याद रहा कि वह मुझे कितना स्नेह

करने थे। अत वह अयोध्या को चली कि राम के शरीर का अंतिम दर्शन कर आये ।

इसमे राम की जहा कल्पित अर्थी रक्खी हुई थी वहां सीता ने प्रवेश किया और विलाप करने लगी । राम ने क्रन्दन सुना । वह परदे के पीछे छिपे खडे थे । झट निकल आये और सीता को अपने सतप्त हृदय से लगाना चाहा । यह देखकर तो सीता को एक दम क्रोध आ गया । उसके मन मे जो रही सही श्रद्धा बची थी, वह भी लुप्त हो गई । अब राम ने प्रयत्न किया कि सीता को वलात् रोक ले । अनुजित् भरत, शत्रुद सब को आज्ञा मिली कि सब मार्ग रोक दो। सीता को निकलने मत दो ।

परन्तु उनको निराशा ही हुई । उसी समय एक विचित्र घटना घटी । सीता ने अपने सारे मार्ग अवरुद्ध देखकर पृथ्वी से प्रार्थना की कि भूमि फट जाय और वह उसमें समा जाय । तुरन्त ही भूमि मे एक छेद हो गया और वह उसमे होकर पाताल देश के राजा नाग विरुण के पास चली गई । भूमि का छेद फिर वन्द हो गया और राम मूर्छित होकर वही जमीन पर गिर पडे ।

४४ .

राम की वन-यात्रा
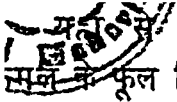
राम को होश आया तो उन्होंने फ्या अनुजित को पाताल भेजा । कपीश को देखते ही सीता और विगड उठी एक बार उनको धोखा हो चुका था । अत उन्होने अनुजित् को निकाल

दिया ।

तब राम ने बिभेक की राय ली । बिभेक ने अपनी ज्योतिष विद्या के बल से देखा कि राम के लिए एक प्रतिकूल समय आनेवाला है । उससे बचने का एक मात्र उपाय यह है कि वह महल को छोड़कर जगल मे जा बसें और अपना शेष समय राक्षसों के सहार में व्यतीत करे । वर्ष के अन्त मे विपत्ति के मेघ हट जायगे और फिर सुख की चादनी छिटकने लगेगी ।

अतः राम अपने प्यारे भाइयों और भक्त साथियो सहित वन को चल दिये । वहा उनको कुबेर के पुत्र त्रिपवकन से मुठभेड़ हुई और वह लक्ष्मण के तीर से मारा गया । पुत्र की मृत्यु का हाल सुनकर कुबेर बहुत बडी सेना लेकर लड़ने आया । परन्तु राम ने उसके एक तीर मारा और वह वही चला गया जहा उसका पुत्र गया था ।

अब वे सब आगे बढ़े । वहा उनको कुम्भाण्ड नाम का एक राक्षस मिला । यह वस्तुतः एक देव था । ईश्वर के शाप से वह राक्षस बन गया था । उसके लिए ऐसा अभि-शाप था कि जब राम उसको दर्शन देगे तब उसकी राक्षस योनि छूटेगी । दयालु राम इस राक्षस को दुष्ट योनि से विमुक्त करके आगे बढे और घने जगल मे पहुचें । वहा उनको एक विचित्र-काम राक्षस मिला । यह अपनी पक्षी जैसी चोच में राम और लक्ष्मण को पकड कर आकाश में ले उड़ा । परन्तु उसकी भी वही दुर्गति हुई । सुग्रीव और हनु-मान ने राम और लक्ष्मण को ढूढ निकाला और अगद और नीलबद् ने उसे मार डाला ।

वहाँ से चलकर एक तालाब पर आये जिसकी तह मे कमल के फूल खिल रहे थे। यह सुन्दर तालाब उनाराज का था। उनाराज ईश्वर का सेवक था जो अभिशाप के कारण राक्षस बन गया था। उसको शाप था कि राम के बाण से 'कोक्' घास का एक पत्ता निकलेगा। उस पत्ते से वह एक चट्टान से बाध दिया जायगा। वह यहा एक खरब वर्ष तक बधा पडा रहेगा। एक मुर्गा उसकी रखवाली किया करेगा और जब कभी उसकी छाती से वह घास का पत्ता अलग होगा तो मुर्गा बाग दे उठेगा, बाग सुनकर एक स्त्री दौडेगी और उसकी छाती को एक मोगरी से कूटगी। उसका जीवन इसी प्रकार अपने अन्त काल तक दुख उठाता रहेगा।

अब राम का एक वर्ष व्यतीत होने आया। वे शीघ्र ही लौटे और अपनी राजधानी मे वापस आ गये। उनको कुछ थोडी-थोड़ी आशा लगी हुई थी कि शायद उनकी विपत्ति के काले बादल हट ही जाय और फिर वह शुभ घडी आवे जब वे सीता के प्रेमपात्र बनकर उसके साथ सुख के दिन व्यतीत करने लगे।

४५.

राम और सीता का पुनर्मिलन

इसी बीच मे वह समय आगया कि कैलाश पर्वत पर देवलोक मे शताब्दि-उत्सव मनाया जाने लगा। देवो के बीच मे भू-मृत्युलोक की बात चल पडी। इन्द्र ने ईश्वर को सूचना दी कि

महाराज समस्त मर्त्यलोक मे सुख और शान्ति से राज करते हैं। राम की वीरता ने सभी राक्षसों को उनके गुप्त निवास-स्थानो से निकाल-निकाल कर मृत्यु के घाट उतार दिया। अव जगत के सुख में वाधा डालने के लिए कोई व्यक्ति शेष नही रह गया। परन्तु जिसने जगत को पीड़ा से मुक्त किया वही आज परम कष्ट उठा रहा है। उसकी प्रिय पत्नी सीता उसका त्याग करके चली गई है।

इसपर दयालु ईश्वर ने राम और सीता को बुलाया कि दोनो मे किसी प्रकार मेल करा दिया जाय।

राम और सीता शीघ्र ही कैलाश पर्वत पर उपस्थित हुये। शिवजी ने देखा कि अपने पति के अन्याय और अत्याचार के कारण सीता अब भी कोपपूर्ण थी। अतः बुद्धिमान ईश्वर ने यह उचित समझा कि पहले तो राम की भर्त्सना की जाय और फिर सीता से दया के लिए अपील की जाय।

परन्तु राम को तो किसी भर्त्सना की आवश्यकता न थी। वह तो पहले ही से प्रायश्चित्त-स्वरूप अनुताप कर रहे थे। उन्होंने झट अपना दोष स्वीकार कर लिया और सीता से क्षमा याचना की।

सीता अब भी दया नही दिखा रही थी। उसको इतना दु.ख था कि वह अपने अपमान को न भूल सकती थी,न क्षमा कर सकती थी। उसने स्पष्ट कह दिया कि अब मेरा राम के ऊपर से विश्वास उठ गया। वह अपने गुण और अवगुण को इतनी जल्दी बदल देते हैं कि मुझे विश्वास नही होता कि उनका हाथ फिर मेरे विरुद्ध फिर कभी न उठेगा।

फिर भी ईश्वर की निरन्तर प्रेरणा से सीता का जी

पिघलीं और वह फिर राम पर स्नेह करने को राजी होगईं। सीता के मुंह से शुभ वचन निकलते ही राम हर्ष के मारे गद्गद् हो उठे। उनका शोक जाता रहा और उनका मन फिर आनन्द-सागर मे किलोले करने लगा। प्रेम की ज्योति जागृत हो गई। अब उनके समक्ष एक आनन्दमय ससार इसमे उन्होने इतने यशःपूर्ण पराक्रम किये।जिनसे सारा जगत जगमगा उठा और जिनकी ख्याति की सुरभि से युग युगान्तर और देशदेशान्तर सुरभित हो गये।

●